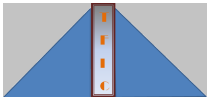

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

[illegible]

महावीरचरितभाषा

अर्थात्

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र की [illegible]

महाकवि श्रीभवभूति के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक
का भाषा पद्य और गद्यों में अनुवाद

अनुवादकर्ता

श्रीअवधवासीभूपउपनाम

लाला सीताराम बी० ए०

प्रकाशक

नेशनल प्रेस—प्रयाग

सर्वाधिकार] सन् [illegible] ई० [मूल्य ।)

महाकवि भवभूति प्रणीत

महावीरचरितभाषा

अर्थात्

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरघुवीर की कथा

महाकवि भवभूति के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक
का भाषा गद्य और पद्यों में अनुवाद

अनुवादकर्त्ता

श्रीअवधवासीभूपउपनाम
लाला सीताराम बी० ए०

प्रकाशक

नेशनल प्रेस—प्रयाग

प्रथम बार] सन् १९.. ई० [मूल्य ..)

प्राचीनपुस्तकमाला

महावीरचरित

अर्थात्

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र की कहानी

महाकवि श्रीभवभूति के संस्कृत नाटक का
हिन्दी गद्य और छन्दों में अनुवाद

अनुवादकर्त्ता

श्रीअवधवासी भूप उपनामक

लाला सीताराम बी. ए.

प्रकाशक

नेशनल प्रेस—प्रयाग

तीसरी बार]　　सन् १९२१ ई०　　[मूल्य [illegible]

लाला सीताराम, बी०ए०, रचित ग्रन्थ

और शेक्सपियर के नाटकों का स्वतन्त्र भाषानुवाद

१—भूल भुलैयाँ ... ... ।-)
२—मनमोहन का जाल ... ... ।-)
३—जङ्गल में मङ्गल ... ... ।-)
४—हैमलेट ... ... ।=)
५—राजा लियर ... ... ।=)
६—राजा रिचर्ड ... ... ।=)
७—[illegible] ... ... ।=)
८—[illegible] ... ... ॥)
९—रघुवंश भाषा ... ... ॥)
१०—कुमारसम्भव भाषा ... ... =॥
११—मेघदूत भाषा ... ... ≡)
१२—ऋतुसंहार भाषा ... ... -)
१३—महावीर-चरित भाषा ... ... ।=)
१४—मालती-माधव भाषा ... ... ।=)
१५—नागानन्द भाषा ... ... ।)
१६—मालविकाग्निमित्र भाषा ... ... ।)
१७—मृच्छकटिक भाषा ... ... ॥=)
१८—सावित्री ... ...)॥
१९—नई राजनीति अर्थात् हितोपदेश भाषा, पहिला भाग ।-)
२०—नई राजनीति अर्थात् हितोपदेश भाषा, दूसरा भाग ... ।)
२१—उत्तर रामचरित भाषा ... ... ।≈)

मिलने का पता—

रामनरायन लाल, बुकसेलर

कटरा, इलाहाबाद।

और किशोर ब्रादर्स, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

PREFACE TO THE FIRST EDITION

"Wherever", says Professor Wilson, "there exists a dramatic literature, it must be considered as entitled to the attention of the philosopher as well as the philologist, of the man of general literary taste as well as the professional scholar."

"Independent, however, of the claims to notice which the Hindu Theatre possesses upon principles which equally apply to the dramatic literature of every nation, it may advance pretensions to consideration on its own account, connected both with its peculiar merits and with the history of stage."

Hindu drama "in particular", writes Elphinstone, "which is the department with which we are best acquainted, rises to a high pitch of excellence". "To the age of these dramas must be added their undoubted literary value as repositories of much true poetry though of an oriental type" (Monier Williams). These plays exhibit a variety not surpassed in any other stage. (Elphinstone.)

Sir William Jones published his translation of "Shakuntala" more than a century ago. He was followed by Professor Wilson with his "Specimens of Ancient Hindu Theatre in 1827". This admirable work contains translations of six dramas, viz., "The Toy Cart", "Vikramorvasi", "Uttara Charita", "Malati Madhava", "Mudra Rakshasa" and "Ratnavali" and abstracts of 24 more. Monier Williams' translation of "Shakuntala" is a glorious monument of successful attempt to render Hindu ideas into English. "Mahavira Charita" has been translated into English by

[illegible] and "Nagananda" by Mr. Ray. Translations of "Uttara Rama Charita" and "Malavikagnimitra" have also appeared from the pen of Professor Tawney of Calcutta.

Unfortunately little has been done in the past [illegible] likely to naturalise these classic productions. Only two dramas have yet appeared in Hindi, viz., "[illegible]" by Raja Lakshman Singh and "Mudra Rakshasa" by Babu Harish Chandra. No apology is therefore needed in the publication of the present series.

The first gem of this string, as I have named it in Hindi, "is one of the three plays attributed to Bhavabhuti whose reputation is only second to Kalidas". "It dramatises the history of Rama, the great hero (Mahavira), as told in the first six books of the 'Ramayan' but with some variations."

How far I have succeeded in my paraphrase I leave my readers to judge. This work was written during my stay at Benares twelve years ago and on my transfer from the place it was laid aside. A revision would have improved some of the renderings but with the present state of my leisure it is impossible. I shall, however, deem myself amply repaid for my pains if a glance over these pages gives my readers some idea of the original or actuates them with a desire to produce better and more faithful translations.

CAWNPORE: }
22nd February 1896. }

SITA RAM.

पहिली आवृत्ति की भूमिका

—:०:—

अवधपुरी सुअलङ्कृति रामहि अँजुआरि ।
[illegible] लखहु जहाँ बहत सुहावन बारि ॥
तहँ रह्यो कायस्थ इक श्रीहरिचरन उदार ।
श्रीरघुनन्दनशरन महँ जाकी भक्ति अपार ॥
सियरघुनन्दनचरनरत तासुत सीताराम ।
राधिलाल कवितानुगत अवध भूपपलाम ॥
कालिदास भवभूति से भारत के कविराय ।
रह्यो जगहूँ देस में जासु विमल जस छाय ॥
लखे जिनहिं रचित ग्रन्थ जग के काव्य खद्योत ।
जिनकी रचनाओंहु छिप जगकविता तम होत ॥
तिनके नाटक काव्य के विश्वबरबरन प्रसाद ।
आपाँइन महँ रचे काशी महँ अनुवाद ॥
शाके श्रुति शशि भूमि शुकल अवधपुरी करि वास ।
कालिदास के काव्य को भाषा करी प्रकाश ॥
वीरचरित उत्तरचरित रचि भाषा सुख दाय ।
तासु प्रकाशन हेतु अब कहत विबुध सिरनाय ॥

ए नाटक भवभूति बनाई ।
श्रीरघुपतिलीला सब गाई ॥
धनुभंजन अरु सीयविवाहू ।
प्रभुवनगमन सहित उछाहू ॥
शूपणखा रावण की करणी ।
तेहिके महँ कविवर सोइ बरणी ॥
रचि भाषा तेहि मतिअनुसारा ।
यह सोइ कहुँ लोकउपकारा ॥

जासु नामबल श्रीहनुमाना ।
महावीर कहि सब जग जाना ॥
यह सोई महावीर रघुबीरा ।
यहै लोक हित बहु[illegible] ॥
जो प्रभुगाथा विविध जग माहीं ।
तेहि सन इहाँ भेद बहु नाहीं ॥
अन्तर बहुरि लखै जो कोई ।
यहै जानि प्रभुरस यह सोई ॥
समाधान हित दीन्हत बानी ।
सुमिरौं तुलसिदास की बानी ॥
"नाना भाँति रामअवतारा ।
रामायन सत कोटि अपारा ॥
कलपभेद हरिचरित सोहाए ।
भाँति अनेक मुनीसन गाए ॥"
रुचिर काव्यरस जे जन जानहिं ।
यहि रचना अनूप ते मानहिं ॥
चित्तविनोद निज धर्महु जानी ।
मैं यहि बिधि हरिकथा बखानी ॥
पढ़ि नहिं सकत संस्कृत जोई ।
लहैं सु ग्रन्थअमियरस सोई ॥
के जो मोह बस रहत भुलाने ।
पढ़ैं देखि यह ग्रन्थ पुराने ॥
समुझैं सुनैं रामगुनग्रामा ।
निजहि जानिहैं पूरनकामा ॥

कानपुर
फाल्गुन शिवरात्रि
सं० १९५९

} श्रीअवधवासी सीताराम ॥

नाटक के पात्र

मर्यादा पुरुषोत्तम और नाटक के नायक ।
अयोध्या के महाराज और नायक के पिता
मिथिला के महाराज
सांकाश्य के महाराज
केकय के महाराज
नायक के छोटे भाई
" " "
" " "
दशरथ के पुरोहित
नायक के विद्यागुरु
जनक के पुरोहित
प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर
विश्वामित्र का चेला
दशरथ का मंत्री
देवताओं के राजा
गंधर्वों के राजा
बन्दरों का राजा
बालि का भाई
बालि का लड़का
बन्दरों के सेनापति
एक बन्दर
दो गिद्ध
लंका का राजा
रावण का भाई
रावण का मंत्री
रावण का सेनापति

सर्वमाय	एक राक्षस
ऋतु	एक देवता
मातलि	इन्द्र का सारथी
सूत	कुशध्वज का सारथी
एक तपस्वी	
एक कंचुकी	
एक किन्नर	

स्त्री

सीता	जनक की पुत्री और नाटक की नायिका
उर्मिला	नायिका की छोटी बहिन
कौशल्या	नायिका की माता
कैकेयी	भरत की माता
सुमित्रा	लक्ष्मण की माता
अरुन्धती	वसिष्ठ की स्त्री
श्रमणा	एक सिद्ध शबरी
लंका, अलका	दो नगरदेवियाँ
मन्दोदरी	रावण की रानी
शूर्पणखा	रावण की बहिन
ताड़का	एक राक्षसी
त्रिजटा	एक राक्षसी

सिपाही, चेरे, प्रतीहारी, सखियाँ, किन्नरी, इत्यादि

[illegible]

श्रीमहावीरचरितभाषा

प्रस्तावना

[स्थान—राजमन्दिर का कुछ भाग]

(नान्दी)

क्रम विभाग से जो रहित स्वच्छन्द अनादि ।
नित्य ज्योति चैतन्य प्रभु ताहि नवाइय सीस ॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार आता है)

सूत्र—आज मुझे आज्ञा मिली है कि ऐसा नाटक खेलो,

संयम मुख्य महान को जहाँ रहैं अति घोर ।
बानी रहै महाद्भुत अर्थ समेत कठोर ॥
रहैं अलौकिकपात्र में जहाँ वीररस एक ।
भिन्न भिन्न सो लखिपरै अति आधारविवेक ॥

तो इसका अभिप्राय यह है कि महावीरचरितनाटक खेलना चाहिये, जिसको

ऐसे कवि रचना करी रहै जासु वस बानि ।
कथा भानुकुलचन्द्रकी जग मंगलकी खानि ॥

सो मैं हाथ जोड़ के निवेदन करता हूँ कि दक्षिण देश में पद्म-पुर नाम नगर था जहाँ तैत्तिरीयशाखा के अवलम्बन करनेवाले, चरणगुरु, पंक्तिपावन, सोमयज्ञ करनेवाले पंचाग्नि, काश्यपगोत्र के, वेदपाठी सुप्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे। उन में से वाजपेयीजी

भाव श्रीकाली पात्र का भिन है सो मुक्त इत्यादि मूल

...र वंश में महाकवि भट्टगोपाल थे। उनके पौत्र और ...नीलकंठ और जातूकर्णीदेवी के पुत्र भवभूति नाम जिन्हें श्रीकंठ की पदवी मिली थी,

भूति नाहिं अनिर लखित परमहंस गुनधाम ।
श्रवनानन्दन जासु गुरु योगि ज्ञाननिधि मान ॥

उन्हों ने—त्रिभुवनलोकनलुभ जिन नाला ।
साहस तेज प्रताप प्रकासा ॥
यह तेहि रघुपतिचरित सुहावा ।
नाटक महँ अति रम्य बनावा ॥

इस अपूर्व ग्रन्थ का श्रीअवधवासीभूपडवनाम लाला सीताराम ने ...सरल भाषा में अनुवाद किया है, इसे आप लोग ...इसे कृतार्थ करें; भवभूतिजी ने कहा भी था,

जो पावन रघुपतिगुनगाथा ।
रच्यो आदि कविवर मुनिनाथा ॥
तासु अंश मोरिहु तहँ बानी ।
सुनैं सुचितमन पंडित ज्ञानी ॥

(नट आता है)

नट—सब ... लोग तो प्रसन्न हैं; पर अनन्य कभी देखा तो है ... इस से यह जानना चाहते हैं कि कथा का आरंभ कहाँसे है।

सूत्र—महात्मा कौशिक जो यज्ञ करना चाहते हैं सो वसिष्ठ जी ...महाराज दशरथजी के घर से अभी लौटे आते हैं और

दिव्य अस्त्र करि दान तासु बीरता जगावन ।
जग मंगल के काज सीय सँग ब्याह करावन ॥
कुलगुरुवंश विशेषि करैं जग पूरनकामा ।
अनुज सहित सो रामचन्द्र लाये निज धामा ॥
नेवत्यो मिथिलापति मुनिराई ।
करन यज्ञ पठयो तिन भाई ॥

महावीरचरित्र २.

नाम कुशध्वज नृप के तात ।
जिन उर्मिला बंधु मिल साथ ।

(दोनों सदृश आते हैं)

पहिला अङ्क

[पहिला स्थान—सिद्धाश्रम के पास एक जङ्गल]

(रथपर चढ़े हुये दो कन्या समेत राजा और सूत आते हैं)

राजा—बेटी सीता उर्मिला आज तुमको चाहिये कि महामुनि विश्वामित्रजी को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करो।

दोनों कन्या—बहुत अच्छा बाबा जी।

राजा—यह ऐसे वैसे ऋषि नहीं हैं। यह तो

यज्ञाग्नि बाँधो मनहुँ पञ्चम वेद अनूप।
तीरथ जग विचरत फिरत धर्म धरे जनु रूप॥

सूत—महाराज सीरध्वजनाथजी, आपने बहुत ठीक कहा। विश्वामित्रजी से बढ़कर तेजधारी कौन होगा। त्रिशंकु को आकाश में रोकना, शुनःशेफ के प्राण बचा लेना, रम्भा को निश्चल करना, बड़े २ अचरज के काम इन्हीं इतिहासों में लिखे हैं।

प्रगट भयेउ जिन वेद तेज के परमनिधाना।
दीन्हो जाहि विरंचि प्रबल परमारथज्ञाना॥
सो विद्यानिधिसंग करत तुम कुलव्यवहारा।
रहि गृहस्थ, को धन्य आप सम यहि संसारा?

राजा—वाह सूत, वाह, बहुत ठीक कहते हो। यही महर्षि लोग हैं जिनके द्वारा वेद प्रगट हुए हैं। इनके दर्शन ही से कल्याण होता है।

एक बारहु भेंट तें छुटै सकल अज्ञान।
चिर चिराय दोउ लोक में रहै तासु कल्यान॥

हैं अहस्र दीहै दखल तुरत जलित फल देत।
जिन रंग, हित श्रीकृष्ण जिन जगत बड़ाई देत॥

सूत—महाराज, मैथिलजी के किनारे सिद्धाश्रम नाम महर्षि की कुटी देख पड़ती है, चारों ओर हरे हरे झाड़ लगे हैं। वह देखिये महात्मा विश्वामित्र जी दो लड़के और साथ लिए आप से मिलने को आरहे हैं।

राजा—तो अब हम लोग उतरकर चलें। (लड़कियों के साथ उतरता है।) सूत, सिपाहियों से कह दो कि आश्रम में न जावें।

सूत—जो आज्ञा। (सूत एक ओर से रथ लेकर बाहर जाता है दूसरी ओर से दोनों कन्या लेकर राजा बाहर जाते हैं।)

[दूसरा स्थान—सिद्धाश्रम]

(विश्वामित्र राम और लक्ष्मण आते हैं)

विश्वामित्र—(आपही आप)

शुभकाज राजमराल हित करि अस्त्रमंत्र सिखाइये।
सोइहि रघुकुलचन्द्र ब्याह सुधौल पर ठहराइये॥
करवाइये जग छेम हित शुभ चरित श्री रघुबीर सों।
परिणाम लखि सुख लहत चित अतिस्वश्र कारज और सों॥

राजर्षि जनकजी को हमने कहला भेजा था कि आप आप हो यज्ञ कर रहे हैं, तौभी आचारके अनुसार आपको न्योता दिया जाता है, सो आप सीता और ऊर्मिला को कुशध्वज के साथ भेज दीजिये। उनकी भी प्रीति ऐसी है कि उन्होंने वैसाही किया।

दोनों कुमार—महात्माजी यह कौन है जिनसे मिलने को आप भी आगे बढ़ रहे हैं।

विश्वा०—तुमने सुना होगा कि निमि कुल के राजा विदेह देश में राज करते हैं।

राजत तिनके बंस महँ अब सीरध्वज भूप।
याज्ञवल्क्य सिखयो जिनहिं पूरन वेद अनूप॥

दोनों कुमार—जी हाँ ऐसे निमिके कुल में महादेव का धनुष रक्खा जाता है।

विश्वा॰—हाँ हाँ

दोनों कुमार—(कौतुक से) और यह भी सुनते हैं कि एक कन्या ऐसी है जो माके पेट से नहीं जन्मी।

विश्वा॰—(मुस्कुरा के) हाँ यह भी है। और

करत जाति जोहि यज्ञ भूमि मह जानी सिय सोह।
अतुल कुशध्वज भूप को रह्यो लहिन सनेह॥

यह कुशध्वज राजा हैं, इनके सामने विनय से रहना।

दोनों कुमार—बहुत अच्छा।

(दोनों कन्या सहित राजा कुशध्वज आते हैं)

राजा—(दोनों को देखके)

आये तेज मुनीश कौन जाति इनमाहि परै।
अहै यज्ञोपवीत ए क्षत्रिय बालक दोऊ॥

चोटी है चूमत बालकि दुओ दोऊ हिलि पीठ कसे है तुनीरा।
ओढ़े हैं खाल रुरु मृग की अति पावन भस्म लगाये शरीरा।
मूँजकी डोर कसे कटि में तन बाँधे मँजीठके रंग को चीरा॥
रुद्राक्ष माल कलाई पै हाथ में पीपलदंड गहे बहु बीरा॥

दोनों कन्या—ए कुमार तो बड़े सुन्दर हैं।

राजा—(आगे बढ़के) महात्माजी प्रणाम।

विश्वा॰—भैया बड़े आनन्द की बात है कि तुम कुशलसमेत आगये। कहो तो,

करत यज्ञ निजवंशगुरु शतानन्द के साथ।
हैं निर्विघ्न कुशल सहित कै मिथिलापुरनाथ॥

राजा—तपस्वी पुरोहित समेत भाई की कुशल में क्या सन्देह है। जिसके भला चाहनेवाले आप ऐसे सिद्ध महात्मा हैं।

दोनों कन्या—महाराज हम तुम्हारे प्रणाम करती हैं

भारतीय नाटक मण्डली

राजा—यज्ञभूमि रत हेतु भूपति जितने महि सब कोइ।
हैं आये यह, जनक सुता उनको की देइ॥

विश्वा०—कल्याण हो।

लक्ष्मण—(धीरे रामचन्द्र से) बड़ा अचरज है कि कुमारी गले लगती है।

राजा—(आप ही आप)

यज्ञभूमि जन आये पितु श्रुतिवादी भूप।
देहु दीन मेरे हिये निरखि सलोने रूप॥

राजा—महात्माजी,

ब्रह्मचारिके रूप ये कौन दोउ राजकुमार?
देख पराक्रम धर्मयुत मनहुँ कीन्ह अवतार॥

विश्वा०—महाराज दशरथ के लड़के राम और लक्ष्मण हैं।

दोनों कुमार—(आगे बढ़ के) प्रणाम, महाराज।

राजा—बड़े आनन्द की बात है कि महाराज दशरथ के लड़के हमने देख लिये (गले लगाके)

कैसे उपजे और कुल ऐसे कुलसुखकन्द।
छीरसिन्धु हि सों भये कौस्तुभमनि अरु चन्द॥

हमने यह पहले ही सुना था।

ऋष्यशृंग जब विधि अनुरूपा।
कीन्ह यज्ञ तब कोसलभूपा॥
लहे पुण्यमूरति सुत चारी।
अतुल प्रताप तेज बलधारी॥

तो अब हम इतनोही असीस दे सक्ते हैं कि आपके आशीर्वाद से इनके सब मनोरथ पूरे हों। रघुकुल के लड़कों की उन्नति तो सिद्ध ही है।

उपदेश करत वसिष्ठमुनि जिन नृपन श्रुतिविधि कर्म में।
जिन सरिस कोउ जग माहिं नृप नहिं प्रजापालन धर्म में॥

आदित्यकुल मनुवंश महँ जिन जन्म लिय भूपन महा।
माहात्म्य तिन कर अगाध, तुम मन जान सो कैसो कहा।
विश्वा०—जगपावन जल जाहि करत पुनीत जिन गुनलोग।
तिनकी अस्तुति करनके तुमहीं अस्य सुजोग।

भाई लखनकी रीति यह है कि विश्राम करके फिर बातचीत करते हैं सो आओ इस शिला की छाहँ में यहीं बैठें।

(सब चलकर बैठ जाते हैं)

(परदे के पीछे)

जय ! जय ! श्रीरामचन्द्र जी की जय ! जगद्विजयी की !

(सब अचरज से देखते हैं)

विश्वा०—यह उतथ्य के पुत्र गौतमकी अर्धांगी अहल्या है। इन्हींके शतानन्द हुए थे। इन पर इन्द्र का मोह हुआ। इसी से गौतम की स्त्री के सतबिगाड़नेवाले इन्द्र को अहल्या का यार कहते हैं। इस पर महात्माजीको बड़ा क्रोध हुआ और अपनी स्त्री को शाप दिया कि जा तू पत्थर हो जा। सो आज भैया रामचन्द्र के तेज से इसके पाप छूटे।

राजा—क्या सूर्यवंशी लड़के का प्रभाव अभी से ऐसा अलौकिक है!

सीता—(स्नेह और अनुराग से आप ही आप) जैसा रूप है वैसा ही प्रभाव भी है।

राजा—रघुकुलमणि बलतेजधुरीना।
ह्वैहैं अवसि सु रामहिं लीना॥
धनुभंजन महँ बल अधिकाई।
करते नहिं जो बरगुन भाई॥

(एक तपसी आता है)

तपसी—रावण का पुरोहित सर्वमाय नाम एक बूढ़ा राक्षस आया है। सो राजकाज से आप से मिलना चाहता है।

दोनों कन्या—अरे राक्षस!

दोनों कुमार—बड़े अचरजकी बात है।

राजा और विश्वा०—(सोचके) अच्छा आवै। (चपरासी जाता है)।

(राक्षस आता है)

राक्षस—आयसुमानि दशमुखकर नाना।
यद्यपि न रुचि होइ नाना॥
माँगन हेतु सुता तुम जानी।
पठयो मोहि मिथिलारजधानी॥

सो कहते हैं कि राजा को यज्ञ करता हुआ पाया, उसके कहने से अब विश्वामित्र और कुशध्वजके पास आया हूँ। (इधर उधर टहलता है)।

राम और लक्ष्मण—(सीता और उर्मिला की ओर देख कर अलग अलग और आपही आप) यह कौन है जो अमृतकी सलाई की भाँति आँखों को तृप्त कर रही है।

सीता और उर्मिला—(इसी प्रकार से उन दोनों की ओर अलग अलग) यह क्या है जो इन्हें देख मुझे इतना सुख मिलता है।

राक्षस—(आगे बढ़कर देख के) अरे यही सीता है। यह निःसन्देह महाराज की रानी होनेके योग है। (आगे बढ़कर) ऋषि प्रणाम है, राजा कुशल से हो।

विश्वा० और राजा—स्वागत।

जाकी आज्ञा सिर धरत बसत मुकुट सिर नाय।
सुरपति हूँ, सोइ कुशल सन है लंकापुरराय ?

राक्षस—स्वामी कुशल से है। महाराजने यह सनेसा भेजा है।

“यज्ञकी भूमि तें पाइ के जन्म भई तनया यक भूप तुम्हारी।
इन्द्रहु पास जो रत्न रहैं सो मिलैं हम कौं यदि चाह हमारी।
सो हम जाचत आपहि मांगन भूपनको जग रीति बिचारी।
दीजिये बन्धु पुलस्त्यकेवंशको कीरति जासु सदा उजियारी”॥

सीता—हाय हाय राक्षस अनीति करता है।

ऊर्मिला—हाय क्या यही कहता है ?

(राजा और विश्वामित्र सोचते हैं)

लक्ष्मण—आर्य इसी से इनको वह निशाचरों का राजा माँगा चाहता है।

राम—मैं कन्या दीन्ही विप्र कहँ काहू कि डर नहिं शोक।
विधिवशदोष लिखि सो न कर जिन जीते त्रैलोक॥

लक्ष्मण—आर्य तो बड़े ही सुजन हैं जो शत्रु के वैरी निशाचर को भी इतनी बड़ाई करते हैं।

सुरतिय जिन बन्दिकरि दीन्ही सबै बिसारि।
मानुषबंसबैरी सबै अबलन्हाहि जो मारि॥

राम—ठीक है, शत्रु होने से वह इस के जोग है कि हम लोग उसे मारैं। पर बड़े तपस्वी, बड़े वीर, असाधारण वैरियों को साधारण मनुष्य की भाँति नहीं मानना चाहिए।

लक्ष्मण—जिस ने वीरों का आचार भ्रष्ट कर दिया उसमें वीरता कहाँ है।

राम—ऐसा ऐसी बात न कहो।

है वीर शुद्ध कुलीन जो निज धर्म पथ पर से टरैं।
तेहि निन्दिये जनि कबहुँ, नहिं एकठाँ गुन सब लखिपरैं॥
जिन खेल में जनु जीति लीन्हो कार्तवीर्यकुमार को।
सो राम तजि रावन सरिस कहु वीर एहि संसार को ?॥

राक्षस—अजी क्या सोचते हो ?

जहँ लगत वज्रप्रहार दारुन घाव बहु लखि परत हैं।
जहँ तोरि नन्दनफूल माल बनाइ सुरगन धरत हैं॥
जहँ देवपतिमातंगदन्तन चोट जनु व्यर्थहि भई।
सोई वीरवर पर महिसुता प्रिय सरिस नित मन सोहई॥

(परदे के पीछे हल्ला होता है)

अंक [illegible]

राजा—महात्माजी! किस ऋषियों को आपके यज्ञ में [illegible] न [illegible] यहीं सब डर के [illegible] चिल्ला रहे हैं।

(सब उठ खड़े होते हैं)

लक्ष्मण—अरे यह कौन है?

आँतों के तार कपार पिरोइके हाड़न ताहि बजावति है ;
भूधर घोर के खोखल सों सो भयानहि गूँजि उठावति है
फूलन छाँडिके दै चहुँ ओर सों रक्त की झाक लगावति है
घोर भयंकर देह अरे यह कौन धौं काल सी आवति है

विश्वा०—यह सुकेतुतनया लखिय सुन्दासुर की जोइ ।
मायनहित मारीचकी नाम ताड़का होइ ॥

दोनों कन्या—बाबा इसे देख बड़ा डर लगता है।

राजा—डरो न बेटी।

विश्वा०—(रामचन्द्र की ठुड्डी छूकर) भैया इसे मार दो।

सीता—हाय हाय यही इस काम को है।

राम—गुरुजी यह स्त्री है।

उर्मि०—सुना तुमने।

सीता—(विस्मय और अनुराग से) यह कुछ और सोच रहे हैं

राजा—वाह वाह क्यों न हो इक्ष्वाकुवंशी हो।

राक्षस—अरे दशरथ का लड़का रामचन्द्र यही है।

बिपुल ताड़का रूप लखि जाहि नेकु भय नाहिं।
मारन महँ तेहि नारि लखि कछु सकुचत मन माहिं ॥

विश्वा०—भैया जल्दी करो देखो आगे कितने ब्राह्मण मारे गये हैं

राम—जो आप जानिए।

दोषलेश बिन नित्य रहि भये जो वेद समान ।
पुण्य पापके विषय यहँ आपहि रहैं प्रमान ॥ (बाहर जाता है)

सीता—हाय इनके ऊपर तो वह प्रलयके बवंडर की नाईं आ रही है।

राजा—(धनुष उठा कर) अरि टारिन कहँ यह ;

ऋषि०—अरे अब तो बाजा जनाई चले

लक्ष्मण—(मुसकाके) देखिये अब आप कौन ;

ज्यों लागत हिय छेदन लीना ;
परी धरनि हूँ विकल शरीरा ;
मधुवन सन जलधार समाना ;
आवत रुधिर नहीं थोड़ आना ॥

दोनों कन्या—बड़ा अचरज है ! बहुत अच्छा हुआ !

राजा—वाह वाह राजकुमार, कैसा कड़ा हाथ मारा है !

राक्षस—हाय ताड़का ! हाय यह क्या हुआ, तोको मुझो मिल उतराई !

यह अपमान मनुज सन पाई ;
कहाँ हाय रावन प्रभुताई !
जिन सुरपुर कर नास निहारा ;
होय न कछु बस चलत हमारा ॥

विश्वा०—यही तो श्रीगणेश हुआ है !

राक्षस—अजी हमारी बातका क्या उत्तर देते हो ?

विश्वा०—इस बात में

सीरध्वजहि समान कुलहुत होई आय है ।
कुलके पुन्यप्रधान कन्या के पितु भूप सो ॥

राक्षस—और यह कहते हैं कुशध्वज जानें ।

विश्वा०—(आपही आप) दिव्य अस्त्र देने का अवसर यही है । मुहूर्त भी अच्छा है । (प्रकाश) भाई कुशध्वज हमने महात्मा कृशाश्वजी की बड़ी सेवा की; तब उन्हों ने ऐसे दिव्य अस्त्र दिये जो मन्त्र से चलते हैं और जिनके मारने से सेना बेसुध हो जाती है । सो इस समय हम भैया रामचन्द्रजी को सौंपते हैं ।

बरष सहस्रन तप कियो ब्रह्मादिक इन हेत ।
तव देखे ए अस्त्र जनु निज तप तेज समेत ॥

रघुकुल पर बड़ी कृपा हुई ।

—अहो यह देखना यहाँ जृम्भकी प्रजा रहे हैं जो
।

—क्या देखना को प्राप्त से निरतु बाल देखकर

—हाँ यह सच है।

जिनकहँ जनु दिशा दिगन्त रंग सब पीतें ।
दै अकाल जनु लाँघि काल पीलत नभ जोती ॥
ज्वलत निरन्तर निजजुझता इत्सन प्रजलापा ।
हथिहँ चालिहु ओर कद्रु कद तेज अपारा ॥
मनहुँ अंशुमी जोति दुहावै ।
जरत किरन चहुँदिशि फैलावै ॥
प्रबल तेज परताप प्रकाशत ।
निरखनहारि दृगन को नासत ॥

कन्या—चारों ओर बिजलियाँ चमक रही हैं, मा
झकोर पड़ती है ।

—दिव्यास्त्रों का तेज भी कैसा प्रचण्ड होता है,
त्वष्टा और इन्द्र की लड़ाई याद आती है ।

जबै इन्द्र अरि मारि हन्यो निज वज्र प्रचण्डा ;
दानवपति उर लागत भये ताके सतखण्डा ॥
ऐसेहि तबै कठोर विज्जु जनु नभ महँ छाई ।
मिलत नाथकौ हँसि रोषज्वाला की नाई ॥

०—भैया रामचन्द्र इनको नमस्कार करके विसर्जन

काल अग्नि अरु वायु वरुन ब्रह्मा अरु धनपति ।
रुद्र इन्द्र प्राचीनबर्हि चारि प्रभाव अति ॥
मन्त्र सहित ए अस्त्र घोर तपबल की नाई ;
एकहु इन महँ सकै जगत सब नासि, बचाई ॥

(परदे के पीछे)

विनय करौं मुनिनाथ मैं [illegible] ।
[illegible] ।

विश्वा०—ऐसा ही होगा।

लक्ष्मण—दोनों [illegible] हुई हैं।

[illegible] ।
[illegible] ।

(परदे के पीछे)

हम सब सब रघुनाथ कौशिक कहा है अब
निज भाई के साथ आवहु हम कहँ दीजिए।

दोनों कन्या—वह देखना बोलते हैं, वहाँ जाना है।

(परदे के पीछे)

हे विद्याओ

विश्वामित्र विरूपके नाम
तिनसन नहिं है सबौं मुनीश ॥
होयहु प्रगट करहुँ जब ध्यान
सबहुँ, जाहु निज निज अस्थाना ॥

लक्ष्मण—भाई के कहने से कन्या अन्तर्धान हो गई।

राजा—महात्मा कौशिकजी आप [illegible] हैं आप को नमस्कार है।

जय नहिं अतुल प्रभाव कौशिक [illegible] ।
करि साहस तो यहि करत यह [illegible] ॥
जिन मारों यहि लोग [illegible] ।
तुमैं दयानिधान [illegible] ॥

इसे तो महाराज दशरथ के [illegible] भी नहीं जान पड़ता

जिनके लड़के पर आप की ऐसी कृपा है। इन लोगों को तो आपने कुछ न किया जो ऐसा आग्रह न किया।

विश्वा०—क्या अब भी आपको विश्वास नहीं है।

राजा—मैं ऐसा कब कहता हूँ।

विश्वा०—तो सब,

सुमिरन ही आवै निकट सिद्धप्रसाद सब जोय।
रामचन्द्र के सौंह लौं चाप उगट अब होय॥

राजा—बहुत अच्छा। (ध्यान करता है)

शतानन्द—(आपही आप) इन दोनों के कुछ और विचारा। भगवान्! अभी कुशध्वज इस तक विचार करोगे।

राजा—इनने ऐ कहा, लाई जावैं।

शतानन्द—इनका उत्तर दिया। वह कहते हैं कि कुशध्वज जानैं।

राजा—ठीक है।

(परदे के पीछे हल्ला होता है)

सहस चढ़ सब जनु चलो शंकरतेज उदोत।
रामचन्द्र के सौंह अब चाप प्रगट सो होत॥

सीता—(मुँह फेर के) अब मुझे बड़ा डर लगता है।

विश्वा०—(राजा से)

ज्यों परवत चोरी करन कोपि नाग हठ चाप।
त्यों निज हाथ लगाइ सोइ॥

उर्मिला—भगवान करैं ऐसा ही हो।

राजा— लैंचत,

उर्मिला—(अति प्रसन्न और लज्जित सीता के गले लगाकर) बधाई है।

राजा—(आश्चर्य से) टूटत चाप॥

शतानन्द—अरे इन वारी रामचंद्रका प्रभाव तो सब से बड़ा है।

लक्ष्मण—

ज्यों रविवंसविभूषन राम भयो निज हाथ सों शम्भुकोदण्ड

[illegible]

राजा—(हँसि के)

[illegible]

([illegible] आते हैं)

जनक—यह क्या यह ऐसी बात आप कहते हैं, हम भी कहीं के बराबर हैं।

राजा—नाम लिये होता सदा सकल तुम्हार कलेस।
नाहिन कहँ हम बर्निता अर्पन अहहिं मुनीस॥

कन्या—(आँसू भर के) अरे हम दोनों को देखते ही गई।

रानल—(आप ही आप) अब क्या देखना है।

विश्वा०—बहुत अच्छी बात है हम बहुत प्रसन्न हैं परन्तु और भी कुछ कहना है।

राजा—कहिये।

विश्वा०—तुम्हारे जो दो लड़कियाँ हैं सो हम यज्ञ और रक्षा के लिये चाहते हैं।

रानल—(अपनी आप) देखते ही जंगल में रहता है तौ भी ऋषियों का इतना पक्षपात करता है।

राजा—इस में क्या विचार करना है हम तो आधीन हैं।

विश्वा०—किसके।

राजा—एक तो आप ही के।

विश्वा०—और किसके।

राजा—भाई सीरध्वज और शतानन्द के।

विश्वा०—इक्ष्वाकु और निमिकुल की ओर से हम ही हैं।

राजा—यह तो आप जानते ही हैं।

तेहि कुलन नाहिं मनु निमि कुल संबंध अनूप।
तौ और तब आप जहँ निज चरण सरूप॥

विश्वा०—अच्छा शुनःशेफ!

(शुनःशेफ आता है)

विश्वा०—बेटा शुनःशेफ अयोध्या जाओ और वहाँ वशिष्ठजी से हमारा यह संदेसा कहो। कि

सुनत चारि निमि देह जहँ कौसलपति सुत चारि।
देवै सिवा होइ अंत को [illegible] पद्धति धारि॥

सो आप सब वधुओं को ब्याहा देकर महाराज दशरथ के आनन्दपुर आइए। और अब हमारा और जनक जी का यह [illegible]म हो जायगा तब गोदान करके कुमारों का ब्याह होगा।

(शुनःशेफ बाहर जाता है)

दोनों कुमार—(आपही आप) यह और भी अच्छी बात है।

कन्या—(दोनों) बहुत अच्छी बात है कि चारों बहिनें एक घर रहीं।

रावन—तुमने हो भी सुनो हमारी बात; तुमने यह लड़की को दे तो दी।

पौलस्त्य कुलभूषण दशानन सुता माँगत जानिकै।
तुम कीन्ह आदर तासु नहिं संबंध अनुचित मानिकै॥
तौ और कोउ विधि करसि अब यह सोच शंका जाइहै।
सुर सहित नृप तुम सकल बन्धौ करन औसर आइहै॥

(परदे के पीछे शोर होता है।)

राजा—ए कौन हैं जो शोर के साथ दौड़ रहे हैं।

विश्वा०—सुन्दसुन्द उपसुन्द के ए सुबाहु मारीच।
रावन के अनुचर दोऊ धर्मविनाशक नीच॥

दोनों राम लक्ष्मण भाई इन्हें, सब ही विघ्न हटाते हैं।
ऐसे कुमार—ये ज्ञाता हैं। धनुष उठाकर चलते हैं।

कन्या—यही सब क्या है?

राक्षस—हाँ,

सब ... ... सर ... बान चलाइ।
... ... सावधान ... जाइ॥

माता—मैं रामचन्द्र, लक्ष्मण, सावधान हो के इन राक्षसों को मारो। तुम सो सकते हो।

विश्वा०—(मुस्काके हाथ पकड़के)

हम जानत, सब दैविक रघुकुलतिलक उदार।
यह ... हैं ... सब विधि सर्वोपरि ... ॥

(सब बाहर जाते हैं)

इति

दूसरे अङ्क का विष्कम्भक

[स्थान लंका—माल्यवान के मन्दिर में बैठक]

(माल्यवान चिन्ता करता हुआ बैठा है)

माल्यवान—हा, जब से मैंने सर्वनाद से सिद्धाश्रम का हाल सुना तब से

महा सिंह सो वीर मार्यो सुबाहू।
हन्यो ताड़का को डर्यो नाहिं काहू।
जो मारीच को दूर ही सो हिलायो।
करै दुख मो चित्त सो सूचनायो॥

फिर उन सब विघ्नों का एक ही छन में तलातल कर दिया तो उस में आश्चर्य क्या है।

तोहि त्यों तोरि त्रिविध भुवनन तेज प्रबल प्रताप को।
कर धरत राजकुमार भंज्यो कठिन संकर चाप को॥

[illegible] विश्वामित्र सब और [illegible] की [illegible] लही।
सो [illegible] [illegible] सबै कही।
सुनि सबौहि पै मौहैं कहि [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

माल्य०

करि [illegible] कह्यो तासु [illegible] सब कही।
सो नहिं [illegible] [illegible] कहु हमारे नहीं।
[illegible] बुद्धि कै [illegible] [illegible]।
सो नाहिं [illegible] [illegible] [illegible]।

अरे क्या शूर्पनखा आई?

(शूर्पनखा आती है)

शूर्प०—नाना की जय हो।

माल्य०—आओ बेटी बैठो। कहो राजा के यहाँ से क्या मिलो है?

शूर्प०—सीता का ब्याह हो गया और महर्षि अगस्त्य ने चन्द्र के पास मंगल की भेंट में माहेन्द्र धनुष भेजा है।

माल्य०—जो जो बड़े सामर्थ्य के हथियार संसार में हैं महर्षि लोग रामही को दे रहे हैं (सोचके)

विप्रअनुग्रह कर जिन सब ने प्रबल हथियार।
ब्रह्मतेज सह रामबल होत अमेय अपार॥

शूर्प०—मानुष ही तो है तो कौन चिन्ता है।

माल्य०—बेटी ऐसी बात न कहो।

सो ऊपरो नरदेह यद्यपि तासु अद्भुत रूप है।
सो मनुज किमि सुरवृन्द गावत जासु सुजस अनूप [illegible]
सुर मुनिन सन लहि शक्ति अद्भुत वस्तु साधारन ल[illegible]
वरदानसमय विरंचि हू [illegible] र हम मन कह्यो॥

और,

[illegible]
अबहिं देहु मम [illegible] नहिं सो करि रारि निहार ॥

शूर्प०—और क्या, इस लिये रावण ने सुना कि ऋषियों से [illegible] कि इस को बहुत [illegible] है

माल्य०—सुनो, विश्वामित्र आश्रम [illegible] ।
[illegible] ॥
करि तप घोर रिझाइ ब्रह्म सो पाइ बड़ाई ।
क्यों माने नहिं जानि छिन महँ निसिचराई ॥

यह भी हो सकता है,

सान चापहि यद्यपि वृषकेतु कन्या सो बाँधी ।
तऊ रामहि सो दैन जनक कहँ आस न आवी ॥
पर को बुद्धि पाइ लिखनि भावी यह हानी ।
नहीं कहौ जगनाथ सो किमि रावन अभिमानी ॥

(प्रतीहार आता है)

प्रती०—जिसे आपने सन्देसा लेके परशुराम जी के पास भेजा था वह यह ताड़पत्र लाया है ।

(पत्र रखकर बाहर जाता है)

माल्य०—(उठाकर पढ़ता है)

"स्वस्ति लंकाराज्यासात्य श्री माल्यवान को लो: परशुराम ने महेन्द्र द्वीप से"

शूर्प०—अरे यह तो प्रभु की नाई लिखते है ।

माल्य०—(पढ़ता है) "महाराजाधिराज लंकेश्वर को अभिनन्दन पूर्वक । आगे विदित हो कि हमने दण्डकारण्यवासी तपस्वियों को अभय किया है । सो हमने सुना है कि विराध दनु आदि कई राक्षस वहाँ फिरते हैं । उनको मना करके हमारा हित और महादेव की प्रीति स्थिर राखए

विश्वविदित के लखि यह कल्यान अपार ।
काहि तौ उत्तर कहिहै बृहस्पति मित्र तुम्हार ॥ हँसि

शूर्प०—यह तो बड़े दर्द के साथ लिखी हुई है ।

माल्य०—इस में कहने की कौन बात है ' परशुराम जी हैं न '
जब जीत लियो तोहि बल जामदग्न्य निज नहिं धारिकै ।
सुन्दर है तोइ पैठ निज दुख होइ शान्ति विचारिकै ॥
पितु सोंलि सब कछु मित्र यह करि प्रान सों इम सब रहै ।
तब कहुँ काज बिचारि सोइ है निठुर पै हम सब कहैं ॥

(सोचता है)

माल्य०—देखो,
नहिं न शंकरशिष्य है सो निज गुरुअनुसंग ।
प्रिय हमारहु है सुनत जो जूझैं दोउ संग ॥

ठीक है । इस में तो कोई जीते हमारा भला ही है । जो क्षत्रियों का नाशकरनेवाला जीते तो बिना उसे मारे उसका क्रोध क्यों शान्त होगा । बस राम मारा गया और हमारा काम सिद्ध हो गया । जो राजकुमार जीते तो वह ब्रह्मर्षि को कैसे मारेगा । परशुराम की मुक्ति हुई तो चला अस्त्र भी जोग से हर लेगा । यह और भी बुरा है ।

शूर्प०—कैसे ,

माल्य०—जामदग्न्य तो जङ्गल का रहने वाला है, वह जो रामचन्द्र को मारे तो फिर वह वैसाही रहा । और जो राजपुत्र उसे बहुत प्रसन्न करके उत्साहशक्ति से उसे जीते तो सब उसे विजयी कहेंगे । उसी समय देवता लोग उसको अधिकार दे देंगे । क्योंकि असुरजीतनेवालों को अपमान के साथ सदा क्रोध लगा ही रहता है ।

अथि दसकंधर मान नहीं कीरति जग जोई ।
क्षत्रियत्रास अरंभ कीन्ह हनि मखन सोई ॥

सो भृगुपति को क्रुद्ध करि कै जो रन हू चहै ।
सो अवसर जग नाहिं कुपन्थ कौरवि गहै ।

शूर्प०—तौ आरम्भ कौन उपाय कियो है ।

माल्य०—भृगुराम को दै कहत है ।

शूर्प०—और, उनके पास एक दूत भी भेजा है

माल्य०—इसका भी कुछ उपाय करेंगे ।

जो मोहि मनावन्ति जन मोह जल संकिलवानि
तो परनाम न सफल हुव दाशुरथ की हानि ।

तो अब चलो मिथिला जाने के लिये रघुनाथजी के प्रयाण को सोंपकर चलें । यहाँ परशुराम ने लिखा है ;

आविर्भा सुजन महात्मन्स्य प्रगट परम गंभीर ।
सकल सुखद अरु पुन्य की राशि वीर अति धीर ।
अति विशुद्ध तप तेज सों निज प्रभुत्व परताप ।
इस्तम अद्भुत तेज बल सुनि आवत भव ताप ॥

(दोनों उठ कर चले जाते हैं)

इति ।

दूसरा अङ्क

[पहिला स्थान—जनकपुर राजमन्दिरमें श्रीसीताजीके महलका एक कमरा]

(परदे के पीछे) अरे ओ विदेहराज के दास दासियो ; राम-चन्द्र कन्या के महल में घुसा बैठा है, उससे जाके कहो तो ;

जीति त्रिलोक जो गर्वित होय महेश समेत पहार उठाया ।
सो दशकंधर को अभिमान जो खेल सों आपन बाँह नसाया ;
ऐसहुँ हैहय के बलवान नरेस को कोपि जो मारि गिराया ।
कान्ति के डार से बाहु हजार जो पेड़ के ठूँठ समान बनाया ॥

तुलि कै भूमि दै बार इकीस जो छत्रियवंस समूल सँहार
रुद्र स्वरूप जो ईसन के छिन आनन कोपि कै क्रोध पहार
मारि हैहय सहस्र भुजैन जो नासक के पितुहूँ को पछार
सो भृगुनंदन दुष्कर है, अंबर आवत है करि कोप अपार

(उधर से राम सीता और सखियाँ आती हैं)

राम—कैसे आनन्द की बात है।

बड़े देव जिन गुरु शम्भु के शिष्य प्रकाशा।
भृगुकुलकानन सौदामिनि के नयन निहारा॥
आवत देखन तोहि, इहाँ लज्जा सब त्यागी।
उर लग मोरी मोहि नेह वश परसन लागी॥

सीता—अरी सखियो यह क्या हुआ।

सखियाँ—कुँवरजी भागे मन।

राम—देखो हमैं इनसे मिलने की चाह बड़ी है। रोकना अच्छा नहीं लगता। किसी के उत्साह को रोकना न चाहिये।

सखियाँ—हाय परसुराम को तो हम लोगों ने सुना है कि उनने बार बार संसार में घूम के छत्रियों का नास करके अपना मनोरथ पूरा किया था।

राम—क्या एक काम से उनका महातम कम हो सकता है कहो तो

निज बाहुबल रनजीति हैहयनाथ आदिहि जस लियो।
पुनि भूमि बार इकीस महि यह लोक निक्षत्रिय कियो।
हयमेध औरन लमेत महि निज गुरु कश्यप को दई।
नहि सिन्धु सम ता कारन हैत हटाय जल मर्म्मन लई॥

(परदे के पीछे)

तजि धीर दुख सन नाल वस सब द्वारपाल निहारहीं।
जेहि ओर चितवत रुकन सूखत देह बदन बिगारहीं॥
परिवार हा! हा! करत सब चहुँ ओर सन बिल्लात हैं।
किये क्रोध भृगुपति हाय भीतर जात हैं॥

[illegible]—ऐसे ही [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] होती हैं। यह [illegible] [illegible] रहा है, [illegible] और [illegible] के लिये

([illegible] से [illegible] कर चलता है)

सखियाँ—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] के सब [illegible] [illegible] [illegible] रही हैं। [illegible] [illegible] से [illegible] [illegible]।

सीता—[illegible] आँखें [illegible] रही हैं [illegible] [illegible] लिये।

(चलती हैं)

[दूसरा स्थान—श्रीसीताजी के महल का भीतर कमरा]

(आगे पीछे राम, सीता और सखियाँ आती हैं)

सखियाँ—देखिए कुँवरजी, कुमारीजी घबड़ाई हुई आती हैं।

राम—(प्रेम और दया से लौट के) देखिये यह बहुत घबड़ाई हो आप लोग समझाइये।

सखियाँ—सखी तुम तो सदा जब हम से कहती थीं कि कुँवरजी सुर असुर जीतने की सामर्थ्य रखते हैं, अब मैं तीन लोक के मंगल करनेवाले जय के लक्षण हैं, तो तुम्हारा मुँह खिल जाता था। अब यह जय करने जाते हैं तो क्यों रोकती हो।

सीता—हाय, यह सब क्षत्रियों का नाश करने वाला परशुराम है।

राम—प्यारी तुम सुख से लौट जाओ।

कुन्दकली सी बिलोकि हँसे जनु मंजु मयूख के पूरब के रंगा।
साहस सो [illegible] से जनि काँपे प्रिया तुम्हारे सब अंगा।
डोलत [illegible] [illegible] रे छोड़, कन्दुक से उछले उर संगा।
भृकुटी ही नाम लो मोरो प्रिया तब [illegible] नहीं जियरो के तरंगा॥

परदे के पीछे, ह ह दासियो दशरथ का लड़का कहाँ है ?

सखियाँ—हाय हाय इन्हीं को पुकारती हैं।

राम—यह वही भयंकर कर्म के करनेवाले की बोल चाल को देख अब नहीं है जैसे बादल की गरज होती है।

सीता—क्या करूँ (उत्तर पकड़ के) आर्यपुत्र जब तक बाराती न आ जाएँ, आप न जाइये।

सखियाँ—प्यारी सखी ने ठीक ही बात छेड़ी।

राम—(आप ही आप) स्नेह तो जीते लेता है (प्रकाश) तो हम धनुष छोड़ देंगे।

(धनुष को छोड़ के हे हे प्राण सखियो इत्यादि फिर पकड़ता है)

सीता—तो तुम्हें हम ज़ोर से पकड़ेंगी।

राम—हाय हाय!

तप को बल को राशि क्रोध कीन्हें इत आवत।
वीररसानन्द हर्ष मोहि तेहि ओर बढ़ावत।
रोकत है इत मोहिं किये बेतन जनु मन्दा।
हरिचन्दन सम लगत अंग सियपरसअनन्दा॥

सखियाँ—अरे यहि क्षत्रियों का राक्षस है परसराम, सूरज की जोति सा चमकता परसा लिए है, आग की लव की तरह ऊपर जटा लपेटे है, भारी टांगों को बढ़ा बढ़ा कर ऐसा चलता है मानों धरती घबड़ाई जाती है। यह तो आ पहुँचा।

राम—त्रिभुवन के इक वीर यही भृगुपति मुनिराई।
दरसत अमित महातम तेज साहससमुदाई॥
चलत मनहुँ मिलि एक रूप तप तेज अखंडा।
भये सिमिटि एक पिंड वीररस मनहुँ प्रचंडा॥

(अचरज से) पावन वेद नेम व्रतधामा।
कीन्हें जगत भयंकर कामा॥
घोर मंजु गुन मूरति माहीं।
वेद सरिस लखाहीं॥

[illegible]

राम—

बने भयंकर अति बहुत [illegible]
किये कोप ज्यों त्रिपुरारि [illegible]।
अलग [illegible] [illegible]
[illegible]।

और [illegible] है
हाथ गहे हैं कुठार कठोर, जटा [illegible] की [illegible]।
काँधे [illegible] है बाँधे [illegible] [illegible]।
हाथ में बाण कलाई पै [illegible]
राजन हैं इक संग मिले [illegible]।
प्यारी यह भी बड़े हैं जानी [illegible]।

सीता—हाय हाय यह तो पहुँच गये। (हाथ जोड़ के) अरे दुख मैं क्या करूँ। हाय साहस न करो।

राम—स्वगत—है यह मुनि जो घोर महाबल।
औरहु यह मोरे मन भावन॥
क्यों काँपहु तुम डर बस भारी।
तजहु कंपन तुम जनकदुलारी॥
केतो यद्यपि कुशल जगमाहीं।
यद्यपि गर्व बस बाहु फुलाहीं॥
तदपि यहि कर बल जाँचनहारा।
जातु मोहि रघुवंशकुमारा॥

(परदे के पीछे) इस लड़के ने कैसा कुकर्म किया है।

शान्तचित्त नित रहत लोकहित कृपानिधाना।
जो तोरन प्रभु हरयो नाहिं शंकर धनुबाना।
कै न सुन्यो [illegible] ताड़का जिन मारे।
कै जानत नाहिं मोहि गुरु सम शिष्य पियारे॥

हमारे शान्त रहने का बुरा परिणाम यह हुआ

फिर अविकार कृपिधन पावा ।
अब फिर निज रूप अनूप उठावा ॥
रघु कुल करै चरित अब जोई ।
तुम्हैं आज निज कारन सोई ॥

परशु०—कठिन तेज तदपि जो अभिमान जनावत ।
जग प्रसिद्ध करि पौरुष सो तुनि मोहि डेरत आवत
लखैं लिखैं हनुमान जग तुम्हैं आज करन को ।
फरकत है मो हाथ गहन हित कपहि चरन को ॥

परन्तु आकार का यहाँ कौन काम है ।

(आगे के बढ़ के) अरे क्षत्री, दशरथ का लड़का राम

राम—जी हम यहाँ हैं । इधर आइए ।

(परशुराम आते हैं)

परशु०—वाह, राजकुमार, तू पूरा इक्ष्वाकुवंशी है ॥
मैं मोहिं ढूँढ़न वचन हेत तू गर्व जनावत ।
साँचै क्षत्रिय तेज मोहि मेरे चलि आवत ॥
जिमहि मत्त गजपाठ सिंह आगे ज्यों डारै ।
जो गिरि से गजकुम्भ वज्र सम नखन बिदारै

सखियाँ—भगवान कुशल करै यह क्या कहते हैं ।

परशु०—(आप ही आप) राजकुमार तो बड़ा सुन्दर
सिर हिलत पाँच शिखंड मंडल नवल सुघड़ शरीर है ।
आकार प्रियदर्शन सहज जनु लसत रुचिर गँभीर है
मनमोहनो यह रूप निरखत विश्वलोचनचोर है ।
तेहि मारिये अब अग्नि हा ! यह कोपवेग कठोर है ॥
(प्रकाश) सके नहीं जगवीर आतुरौ जो धनु तोरी ।
ता के टूटत क्रोध बाँह मेरी अब मोरी ॥
खंडपरशु कहि लोक गहत जेहि शिवहि पुकारैं ।
सो यह परशु कठोर कंठ पर तब कसि मारैं ॥

सखियाँ—हाय हाय यह तो [illegible]

राम—(बड़े मान और कौतुक से देख के,) महात्माजी यह वही परशु है जिससे आपने [illegible] [illegible] परिवार समेत [illegible] [illegible] था

सखियाँ—कुमारी [illegible] [illegible] हुआ है पर [illegible] परशुरामजी के [illegible] रीति से [illegible] रहे हैं।

सीता—(डरकर) परशुराम के ओर देखती है)

परशु०—(आपही आप) यह [illegible] है यही तो बात [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] और [illegible]रता साथ ही है। (प्रकाश) राम, हाँ यह वही परशु है।

सखियाँ—कुछ तो थोड़े हुये।

परशु—जानत सकल अस्त्र ब्यवहारा।
जब जीत्यो रन सहित कुमारा॥
होय प्रसन्न आदि हर लीन्हा।
तब यह परशु मोहिं गुरु दीन्हा॥

राम—(आप ही आप) इतने पर भी यह कहते हैं, बड़ा गर्व इनको है (प्रकाश) इसी से तो महात्माजी तीनों लोक में तुम्हारी वीरता प्रसिद्ध है।

जेहि तन कंठिनाथ भगवाना।
खंडपरशु कहि सब जग जाना॥
लहि सोइ तारकारिगुहि हराई।
परशुराम पदवी तुम पाई॥

क्योंकि—उत्पत्ति है जमदग्नि तन गुरु खंडपालि भगवान है।
बल तेज को कहि सकत कर्ण विदित सकल जहान है॥
महि दीन्हि सात समुद्र बेरी, जानि मानिय [illegible] को।
है स्वयं लौकिक कौन गुन तव ब्रह्मतेजनिधान को?

सखियाँ—कुँवरजी कैसी बातें कह कह कर मना रहे हैं।

परशु०—हे राम धीरज धाम, निज कुलन कुल अभिराम।
मैं दियो तोहिं देखि, अब प्रीति होति विशेषि॥

और सुन लो, सन्धान किय जहँ कुशल महारा।
छेद्यो तेहि शर मारि कुमारा॥
सो उर अतुल वीर लखि पुलकित।
आवत रहौं कहौं साखी नित॥

सखियाँ—कुमारी जी देखो तो कुँवरजी कैसे तेजधारी हैं तुम तो व्यर्थ उदास हो समझती हो।

सीता—(आँसू भर के सांस लेती है)

राम—महाराज जी मैं तो, जिस के लिये आप आये हैं उसके लिये हूँ।

सखियाँ—कुँवर जी का विनय वीरता के साथ कैसा अच्छा लगता है।

परशु०—(आप ही आप) अरे यह क्षत्रिय का लड़का कैसा सुजन है। अपने और पराये गुणों को कैसा समझता है और उन का कैसा आदर करता है। विनय इतना बढ़ा हुआ है कि उस के आगे अहंकार छिप सा गया है।

यद्यपि न मोहिं लौकिक नर मानत।
मेरे गुन चरित्र सब जानत॥
तदपि बोलत निधरक तजि त्रासा।
यदपि विनय मन करत प्रकासा॥
अहै कौन यह बालक बीरा।
गुन महिमामय रच्यो शरीरा॥

बड़ा अचरज है

त्रिभुवन अभय देन के काजा।
यहि कों देह लखिय सब साजा॥
ज्ञान विनय बल धर्म समेता।
प्रिय सात्विक गुन तेज निकेता॥

यह जो, सुखदेव यह वह जानकी जिन भारा ।
बैठेसाबिन्द कुलिदर्श, निज कपना ।
स्वयंवर के इस कुल की जानहु हैं ।
नहीं प्रजा जासु रानि पुरुष के कारन हैं ॥

(प्रकाश) आज सौभ राजकुमारों के जीवन ले जायँ ।

राम—, आप हैं आप ; ठीक है ।

(परदे के पीछे)

आयसु है यहि विधि कही दीन्हि जनकपुरनाथ ।
शतानन्द कुलगुरु सहित सब सोहैं निज हाथ ॥

सखियाँ—कुमारी जी आज्ञा पाकर आसिष मिलन चलीं ।

सीता—भगवती लंभाद की कृपी ही तुम्हारे हाथ सौंपी है । मंगल करना ।

(सखियाँ बाहर जाती हैं)

धनुष्धान—यह रंडिन पढ़ सोहि सरन लिन ।
शतानन्द आंगिरस पुरोहित ॥
याज्ञवल्क्य सोहि भागु दिवाना ।
सो यहि धनु कहँ बैठ पहाना ॥

अच्छा तो हम एक कवित्त ज्ञानियों ने हमारे वेद पढ़े देख जानते हैं ।

(परदे के पीछे)

एक—तो अब क्या करना चाहिये ।

दूसरा—अहहा—

आवो जो राहुल बिन यह ललकार लिखित कीजिए ।
सुनि बैठ नाहि यहि मधुपर्क भोजन कीजिए ॥
जो बैर मानि कुतूहल बिन आज तोहि छेड़न कहै ।
तो जानि देह यहि केतु लिन लम्बर लहै ॥

राम—दई आज लौं अच्छा की अन्त रहे हैं ।

परशु०—सुन रे बालक

[illegible]

[illegible] मोहिं दुःख अपार ॥

राम—[illegible] हैं।

परशु०—अरे बालक तू क्या कहता ?

[illegible]

राम—महाप्रभु आप तो बड़ी कृपा कर रहे हैं।

परशु०—अरे यह तो हम पर भी वाक छलता है। अरे क्षत्रिय के बच्चे तू अभी बच्चा है और मेरी नई वय है इसी से तुझ को बड़ा नरम लगता है।

सब जानैं याहि लोक महँ गावैं रचि रचि गाथ ।
परशुराम निज मात को काट्यो सिर निज हाथ ॥

और सुन रे मूढ़

क्षत्रिय की जाति कौ विरोध मानि बाल्हि को
पेट सन काढ़ि लेइ खण्ड करि डारे हैं।
राजन के वंसन इकीस बार कोप करि
खेत कहूँ ओर भूमि हेरि हेरि मारे हैं॥
बैरिन के लोहू के तड़ाग मैं मज्जन करि
बोरिकै बुझाये निज क्रोध के अँगारे हैं।
रक्त ही को तर्पन पितरहि दीन्ह कौन मूढ़
जानत सुभाव और न चरित्र हमारे हैं॥

राम—निर्दयी हो के मारना तो दुष्ट का दोष है उसमें कौन डींग मारने की बात है।

परशुराम—अरे क्षत्रिय के लड़के तू बहुत बकता है।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

(जनक और शतानन्द आते हैं)

जनक और शता०—भैया रामचन्द्र [illegible], [illegible] हो जाओ।

राम—हाय क्या तो हमें इन ऋषियों की आज्ञा पर चलना होगा ?

परशु०—कहिये आतिथ्य तो कुशल से हो ?

शता०—विशेष कर तुम्हारे दर्शन से। और,

आये जो पाहुन पूजनजोग हैं बैठिये नाथ करें सतकार।

परशु०—पुरोहित जी, वेदपाठी, यज्ञकरनेवाला, याज्ञवल्क्य का शिष्य बड़ा भलामानुस सुना जाता है। पर हम अतिथि सत्कार नहीं मांगते, हम पाहुने नहीं।

शता०—पौढि कुमारी के मन्दिर में तुम भ्रष्ट कियो गृहधर्म हमारा।

परशु०—हम तो वनवासी ब्राह्मण हैं हम महाराजाओं के घर की रीति क्या जानें।

राम—(आपही आप) जिसने संसार को दान कर दिया उसे राजाओं से गर्व जनाना कैसा अच्छा लगता है।

जनक—आवत हैं हमरे केहि कारन छेड़त हो रघुवंशकुमारा।

(कंचुकी आता है)

कंचुकी—कंकन छोरन रानि मिलीं वर भेजिये नाथ न लाइय बारा।

जनक और शता०—भैया रामचन्द्र तुम्हें तुम्हारी सास बुला रही है, जाओ।

राम—महात्मा परशुराम जी देखिये वहाँ की आज्ञा यह है।

परशु०—कुछ दोष नहीं है। लोकरीति कर लो। जाओ सासुओं से हो आओ। पर वनवासी नगरों में बहुत देर तक नहीं ठहरते इस से हम जाना चाहते हैं विलम्ब न करना।

राम—बहुत अच्छा।

(सुमन्त्र आता है)

सुमंत्र—वशिष्ठ और विश्वामित्र जी आप लोगों को परशुराम जी समेत बुला रहे हैं।

और सब—दोनों महात्मा कहां हैं ?

सुमन्त्र—महाराज दशरथ के डेरे में।

राम—बड़ों की आज्ञा से मुझे जाना पड़ता है।

सब—अभी वहीं चलैं (सब बाहर जाते हैं)

इति।

तीसरा अङ्क

[स्थान—जनकपुर महाराज दशरथ का डेरा]

(वशिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, जनक और शतानन्द आते हैं)

वशि० और विश्वा०—परशुराम,

इन्द्र की पूर्व सों शत्रु लराइ प्रसिद्ध जु इन्द्र के मित्र पियारे।
राजत जो यहि लोक के बीच सुरेस समान प्रकासनै सारे।
मानें रहैं हम से जन जासु जु विश्व में है मनु सों पद धारे।
भूप नरेश भो पुत्र के मोह सों मांगे अबै कर जोरि तुम्हारे॥

सो इस व्यर्थ झगड़े को छोड़ो।

रचा जाय मधुपर्क और घी में पाकै अन्न।
सोतो आये सोतिघर कह हम सकल प्रसन्न॥

परशु०—जो आप लोग कहते हैं उस में मुझे इतना ही कहना है कि क्षमा करने में बार न लाता जो राम ऐसा वीर न होता। आप देखें तो,

हैं यद्यपि बालक राम, हैं जगविदित कर्म दिखाइकै।
पुनि परशु धर कबहीं न लाख्यो हानि पर मन लाइकै॥

यह जानि सिय, की तुम न उचित, लख्य ज्ञान न क्यों कही ;
नाहिं तुम यह कहुँ वीर कोउ परलोक सम रुचिर कही ॥

दो० जो तन पाय हुतात किये जानत हैं सब देव ।
सिद्धि जो तेहि संयोग सों करुं दिखा के भेव ॥
कहत फिरत इक एकसों भाग सकल संसार ।
सके न कोइहु यज्ञसों नाहि कर ताकनहार ॥

वसिष्ठ—ऐसा कब क्या अनन्तर इस आयुधविद्यालिका को लिये लिये। परशुराम जी तुम ब्राह्मण हो, तुम को तो पवित्र मार्ग पर चलना चाहिये। तुम तो अत्यन्त तपस्वी हो तुम को चाहिये कि ऐसी करुणा और दया ही जो भावना है उसको पाल डालो जिस से चित्त शुद्ध हो राग और अज्ञान हो, शोक से रहित हो सुख पावै और पशु को रक्षा हो। जब चित्त शुद्ध हो जाता है तो अत्यन्त नाम ज्योति का ज्ञान हो जाता है जिस से फिर किसी प्रकार का विरोध चित्त में नहीं आता और जिस से अन्तःकरण में पूरी आनन्द आजाती है। ब्राह्मण को यही करना चाहिये। इसी से पाप और मृत्यु से परे हो जाता है। तुम तो अब तपस्या भी कर रहे हो। देखो तो,

ब्रह्मा ऋषिन को नृपन, सुधाकर सूर्य राजा ।
सोमपाय नरनाह सहित निज जानि समाजा ;
जनक कहत नित वह पढ़े उपनिषद सारे ।
याचक हैं याहि समय राम के काज तुम्हारे ॥

परशु०—ठीक है। परन्तु,

कैसे देखौं आपके बिन त्रिशूल इकार ।
तुम हैं त्रैलोकपति सुरनिद रीतकुमारि ॥

विश्वा०—जो तुम को गुरु का इतना विचार है तो जो तुम कहते हो सो ठीक है क्योंकि,

भृगु वंशहु औ अंगिरस के विधि सन ऋषि तीन ।
तुम भृगुवंशि इसलिए यह यह आंगिरस प्रवीन ।

परशु०—करिहौं प्रायश्चित मैं करि अपमान तुम्हार।
दै न धर्म निज छाँड़िहौं गहि निज हाथ हथ्यार॥

और भी—
सुनिहु सन प्रिय सब जन ज्ञाना।
राखब निज जन कर नित माना॥
तुम सब अब्हु, बाँह यह मोरी।
जहँ कुंकरी समर महँ डोरी॥

विश्वा०—(आपही आप)

यह सब महिमा करि प्रगट परशुराम की बात।
छिन उपजावत आचरज हिय नित बेधत तात॥

परशु०—सुनो महात्मा कौशिकजी,

गुरु वशिष्ठ नित ब्रह्म मैं रहैं लगाये ध्यान।
बीरन के कुल धर्म मैं तुमही गुरू प्रधान॥
भृगु के उत्तम बंस मैं लह्यो जन्म जग जोय।
सो कर लीन्हो शस्त्र तेहि इहाँ उचित का होय॥

वशिष्ठ—(आप ही आप)

है स्वभाव सन यह असुर, गुन सन यदपि महान।
महिमा लहि मर्याद तजि, जगत करै अभिमान॥

विश्वा०—भैया हम यह कहते हैं।

तुम एक के अपराध से तजि धीरमति चित, कोपि कै।
बिन काज क्षत्रिय जाति मारी व्यर्थ ही प्रण रोपि कै॥
द्विज बीस हू कै क्षमि इक्कइस बार जग सब छानि कै।
संहारि रोक्यो क्रोध पुनि मुनि च्यवन कहनो मानि कै॥

परशु०—पिता के बध से जो क्षत्रियों के मारने का बड़ा काम मिला था उसे तो मैं छोड़ बैठा इस में क्या कहना है।

वज्रखंड के सरिस परशु यद्यपि अति प्यारा।
बन्यो छत्रबध छाड़ि ईंधनै रा॥

रुइ चरित कोइउ बिना करि नैहल दाना ।
आगि चरित बिरहुहि न्यों तो सर्प समाना ॥
बहुदिन बीते नाहिं बधत क्षत्रिन सुनि बानी ।
तको परशु को नवल क्रोध को आगि झुरानी ॥
फिरि बल लखि निमि कि उदय क्षत्रिकुल बाढ़ा ।
हमरि आजु तेहि देखन हैं बहुरि जनु डाढ़ा ॥

राम का सिर काटने का दूसरा और भी कारन है। अब तो,

यह बालक कीन्हेसि चंचलपन ।
काटि तासु सिर मैं लैहौं धन ॥
रहैं अबै रघुनिमिकुलराजा ।
फिरि न काहु कर होइ अकाजा ॥

शता०—किस की इतनी सामर्थ्य है जो हमारे प्यारे यजमान राजर्षि विदेहराज की परछाईं भी लाँघ सकै। दामाद के छूना तो दूसरी बात है,

याहि घर के आचरन नित रहे धर्महितलागि ।
बहुदिन से तहँ रहत ज्यों गार्हपत्य की आगि ॥
सो बैरी के हाथ सों जौ पावै अपमान ।
तौ हम धिक ब्रह्मण्य धिक् धिक् अंगिर सन्तान ॥

विश्वा०—वाह, भैया गौतम, वाह, राजा सीरध्वज तुम ऐसा पुरोहित पाके धन्य है।

निबल होइ जिनसै नहीं छिनै राज नहिं तासु ।
जिन नृप बल रक्षा करत तुम पंडित द्विज जासु ॥

परशु०—अजी गौतम तुम्हारे ऐसे कितने क्षत्रियों के पुरोहित ब्रह्मतेज से कूदे थे। पर सांसारिक तेज तो अलौकिक तेज के सामने बुझ से जाते हैं।

शता०—(क्रोध से) अरे बैल, निरपराध क्षत्रियों का वंश नाश करनेवाले, महापापी बुरी चेष्टावाले नीच काम करनेवाले,

वेदविरुद्ध चलनेवाले चाण्डाल पतित, धर्म छोड़े, तू हम को ऐसी सिखौती देता है। क्यों रे तू जो अपने को ब्राह्मण कहता है यही है ब्राह्मण का काम?

काहद मातंगोल, ब्राह्मन को मुनि छोड़ियो।
यज्ञ करत असनीष, हनत ब्रह्महत्या लागिये॥

परशु०—क्यों रे ढाब नहाने वाले तुच्छ क्षत्रियों के पुरोहित, क्यों रे अहिल्या के पूत हम नीच कहाँ हैं?

शता०—अरे नीच पापी गुरुकुल के कलंक

क्षमा करै गुरु और नृप क्षमा अधिक तिन माहिं।
शतानन्द यहि अधम को क्षमा करै अब नाहिं॥

(इतना कहकर कमंडल से पानी हाथ में लेता है)

वसिष्ठ—अरे कोई है भाई, बचाओ, बचाओ। अरे यह तो पहले से हीं भभकी आग की नाईं क्रोध की आग से शतानन्द का ब्रह्मतेज प्रचण्ड हो रहा है।

शता०—(जल्दी से शाप के लिये पानी लेके) देखैं आपलोग

तुमहिं वधन चाहत यह पापी।
तेहि वेगहि करि क्रोध सरापी॥
करौ वायु सँग जनहुँ कृशाना।
खल करहि अब छार समाना॥

(परदे के पीछे) यह आप क्या करते हैं, क्षमा कीजिये। आप की तपस्या का प्रबल तेज ऐसे पर नहीं पड़ना चाहिये जो आप के घर आया है।

सगा बन्धु बाम्हन गुनी आयो है तब गेह।
ताहि विनासन चहत तुम कौन धर्म कहु एह?
छाड़े जो मर्याद निज लहे शास्त्र महँ बोध।
कबौं ताहि सुधारिहैं, आप करिय जनि क्रोध॥

वसिष्ठ (शाप का पानी गिरा कर) भैया शतानन्द देखो

सो तुम्हारे समधी महाराज दशरथ क्या कहते हैं, और वह भी तो सुनो।

द्वै हैं मंगल काज मैं हम छत्रिन समुदाय ।
करौ शांति जाचनि संग हम देवविप्रनमा ।
वामदेव के संग हम जीवन के काजा ।
वामदेव मुनि कौं सहित सब छिन्न समाजा ॥

(पीछे लगा के बाहर निकाल देता है)

परशु०—देखो क्षत्रियों का पाला बहुधा कैसा गरजता है। वह क्या करेगा। अभी हे कौशलराज और विदेहराज के पाले ब्राह्मन और सातों कुलपर्वत और द्वीपों पर रहनेवाले सभी, हमारी बात सुनो।

तपका के हथियार का जोहि काजुहि सब होइ ।
समुझै निज निज बैरी प्रबल यहि छिन मो कहँ सोइ ॥
छिन सोरहवन करि जगत छिन दशरथ औ राम ।
दोउ कुल के सब लोग हनि लहै परशु विश्राम ॥

(परदे के पीछे) परशुराम, परशुराम तुम बहुत बढ़े जाते हो।

परशुराम—अरे यह तो हमको बुलाने को जनक बिगड़ रहे हैं।

(जनक आता है)

जनक—नसत सकल निज छत्रपन बौधपन अन्ते ।
परमब्रह्म की ज्योति मांहि नित ध्यान लगावै ॥
बसो गृहस्थी माहिं जु क्षत्रिय तेज प्रचण्डा ।
प्रगट होय सो उद्धवाग्रत कर सन कोदंडा ॥

परशु०—अजी जनक,

तुम धार्मिक अति वृद्ध लहि परमारथ ज्ञाना ।
वेद पढ़ायो तोहि सुयंकर शिष्य प्रधाना ॥
जोग जानि यहि हेत करौं आदर मैं तोरा ।
तू केहि हित भय छांडि कहत अस वचन कठोरा ?

[illegible]

जनक—तुम्हारे विनय जाय नाहिं मैं। कहौं तुम्हें
रच्यौ भृगुकुलनंदन का यहि तरसौं पुनि आनि।
रहो हेर लौं त्रिपुरारि कौ हम अति अनुचित जानि
तुम समान हम लखन नहिं करते जात अपमान।
अहै धनुष याहि तुम पर अब उपाय नहिं आन॥

परशु०—(रोष से हँस के) क्या कहा तुमने! क्या
र! बड़ा अचरज है। (परशु सम्हाल कर)

ईखत त्रिपुरारिधनुष धर्यो यह परशु कराला।
जो लखि क्षत्रिय सौंह हँसत मनु भड़कत ज्वाला
याज्ञवल्क्य के आदर सों मोहिं लखत निहारो।
वृथा फूलि यह डींकर क्षत्रिय गरजत भारो॥

जनक—तो कहना क्या है।

भीत सरिस ह्व कोटि वचन गरजत अति घोरा
लसै जोम सों डोर चाप सों यहि छन मोरा।
ग्रसन काज संहार काल जब बदन पसारै।
तीनन को यह तुष्ट आज ताको छवि धारै॥

(धनुष उठा

(परदे के पीछे)

करै जु सहस गाय नित दाना।
छुवै न सर तब हाथ पुराना॥
उचित न द्विज पर क्रोध तुम्हारा।
जानि उठाइये भूप हथ्यारा॥

जनक—माई महाराज दशरथ,

नहिं अकाज हम कहैं जो कहई।
को द्विज के कटु वचन न सहई॥
बरसहि वचन अमंगल ऐसे।
बरबस रहत सहैं सो कैसे?

परशु०—अरे नाती को पूँछ न, हमें उलटा कहता है, खड़ा रह।

[illegible]

(दशरथ आते हैं)

दशरथ—परशुराम सुनौ जी।

जैसे इहाँ जनक नृप थोरा।
तैसे नाहिं तुम धरत शरीरा॥
तुम अब वृथा रारि जनि करहू।
हम सब कर धीरज किमि हरहू॥

परशु०—तो फिर ?

दशरथ—हम क्षमा न करेंगे।

परशु०—तुम तो हमें और मालिक की नाईं घुड़क रहे हो। भूल गए कि जमदग्नि के लड़के परशुराम जनम से स्वतन्त्र हैं।

दशरथ—इसी से तो क्षमा नहीं कर सकते।

तजि मर्याद करै जो कर्मा।
तिनहिं सुधारन क्षत्रियधर्मा॥
तुम मर्याद लाँघि पद धारे।
हम क्षत्रिय तव दंडन हारे॥
होहु शान्त नतु एक छन माहीं।
मिलहि दंड तोहि संशय नाहीं॥
कहँ जप तप ब्राह्मन व्यवहारा।
कहँ यह क्षत्रिय जोग हथ्यारा॥

परशु०—(हँस के) बहुत दिन पर परशुराम के सामने तुम्हें जो तुम क्षत्री उन को सुधारनेवाले मिले।

दशरथ—अरे इस में कुछ सन्देह है.

यदि होय पुरुष अज्ञान कै सन्देह भ्रम मन में रहै ।
जो करत बिना बिचार कछु, उपदेश सों गुरुजन गहै
जो करत बिन सन्देह भ्रम सब जानि बूझि अकाज कै
तेहि दण्ड देइ न भूप, होय बिनाश प्रजासमाज को ।

विश्वा०—महाराजने बहुत ठीक कहा ।

जो न होय तोहि ज्ञान होय कछु भ्रम सन्देहा ।
पद वसिष्ठ के पास जाहु छूटन बिधि यहा ॥
लहै शुद्ध मन ज्ञान कोउ किमि करै अकाजा ।
सो कहिहै जो पाप लहै कैसे तेहि राजा ॥

गु०—नर ज्ञान देइ कल्याण कहँ मेरे गुरु त्रिपुरारि हैं ।
मैं कीन्ह क्षत्रिय नाश जेहि कोटि छत्र वंश सुधारि हैं
हैं वृद्ध ब्राह्मण जोग कहिय वसिष्ठ कहँ यहि सन कहा
को जोग जग महँ मो सरिस यहि काल के कबहूँक र

वसि०—भृगु की संतान से हम हारे, यह बड़े आनन्द
है परन्तु ।

हमरेहि पालन जोग जो हम कहँ परम पियार ।
हमरे ही घर में जनम सब देखत संसार ॥

जनक, दश, और विश्वा०—यथार्थ यथार्थ नहीं जानता !

गुरु सनातन जगत के राखै ताहु न मान ।
हम सब तोहि सुधारि हैं दुष्ट गयन्द समान ॥

परशु०—ए सब तो मुझे मानते ही नहीं

भइको परशु पाइ अपमाना ।
यहि अवसर मो क्रोध समाना ॥
यहि जग माँहि महीपति जेते ।
रहैं सकल दशरथ बल तेते ॥

सो अच्छा है.

बाहुबली जग की यह रीती ।
छत्रिय नाम हेतु हिय हेती ॥
करौं आज [illegible] छत्रिकुलनाशा ।
कुटिलपथिक लखि शस्त्र धरि भारा ॥
सुनि सुहृद की बात प्रमुदित मन सुख मेरो ।
अबकाल कौन लखात हिंदै तेहि धरो कहो रे ॥
है महकम अप्रमान पथ ज्यों बाहुन ज्वाला ।
प्रलय काल जब दहत बहत सब बायु कराला ॥

वसिष्ठ—कैसे शोक की बात है ।

यद्यपि कहै बन्धु यह तोरा ।
बालक कहन काज अति थोरा ॥
कहै अंब नृपधर पुनि तोई ।
केहि कारन अपराध न होई ॥
जो मैं याहि करि क्रोध निहारा ।
हैहैं भृगुकुलसंतति छारा ॥

विश्वा०—अरे परशुराम तू समझता है कि इन के पास में ब्रह्मबल नहीं है वैसे ही इनके शस्त्र की शक्ति भी नहीं है ।

निन्दत क्षत्रि भी जिन सभा लरिके को अनिष्ट हिये महँ आनी ।
देने हैं दुःख हमैं अब लौं नाहिं बोलें हैं नाती लरिका को जानी ।
कोप की आगि चढ़ी चुहिले पर शापन के उकसावन पानी ।
हाथ सों बाँचे दुहावत है धनु बेगि बेताय कै बान पुरानी ॥

परशु०—सुनो जी विश्वामित्र,

तुम्हरे ब्रह्मतेज जो भारी ।
होहु जाति बस कै धनुधारी ॥
निज तप प्रबल दहौं तप तोरा ।
भंजै धनुहि परशु यह मोरा ॥

(पर्दे के पीछे)

मैं महात्मा कौशिकमुनि का चेला राम हाथ जोड़ के विन- ती हूँ

नाथो, कृपानुज कीति जो भूलो हैहयईस।
जीत्यो परशुधर, ताहि मैं जीतौं देहु असीस ॥

कुशा०—मैया रामचन्द्र जायगे अब क्या होगा।

जनक—जो अच्छी बात है उसे होने दीजिये। रामचन्द्र की हो।

रघुनन्दन को वदै यह हरिहैं गेहनिधान।
मुनि वसिष्ठ आदिक सकल यहि के अहैं प्रमान ॥

—निज प्रजापालनधर्मरत जग माहिँ विदित सदा रहे।
करि यज्ञ वेदविधान नित जो पुरुष रविकुलनृप लहे ॥
सोइ वंश मे श्रीराम आजहि जन्म पावन जनु लह्यो।
सर्वज्ञ जानत ब्रह्म तासु प्रभाव जो यहि विधि कह्यो ॥

परशु०—आओ जी राजकुमार परशुराम को जीतो (मुसकाके) त सकोगे। रेणुका का लड़का तुम्हारा काल है, बड़ा कठिन का जीतना है। अब तो

कटत क्षत्रियन सीस चलत लोहू की धारा।
भड़कत शर की प्रबल आगि सब है छनकारा ॥
बजत डोरि धुनि गूँजि कुंज सम लहि ब्रह्मंडा।
कालघोरमुखकाज करैं यह मम कोदंडा ॥

(सब बाहर जाते हैं)

चौथे अङ्क का विष्कम्भक

[स्थान—लङ्का, माल्यवान का घर]

(परदे के पीछे)

सुनो जी सुनो देवनाओ मंगल मनाओ, मनाओ

जय कृशाश्व के शिष्यवर विश्वामित्र मुनीस ।
जय जय द्विजपतिवंश के तानि अवध के ईस ॥
अभय करत जो जगत को करि मृदुलस्मित मन्द ।
सरन देत त्रैलोक्य कहँ जयति रघुकुलचन्द ॥

(घबड़ाए हुए शूर्पणखा और माल्यवान आते हैं)

माल्य०—बेटी तुमने देखा देवताओं में कितना एका है कि इन्द्र आदि आप से आप बन्दीजन बने जाते हैं।

शूर्प०—जो आप समझते हैं उससे और कुछ थोड़ा ही हो सक्ता है। मेरा तो जी कांप रहा है, अब क्या करना चाहिये।

माल्य०—करना यह है कि वह जो भरत की मा रानी कैकेई है उसे राजा ने बहुत दिन हुये दो वर देने को कहा था। आज कल दशरथ की कुशल छेम पूछने उसकी चेरी मन्थरा अयोध्या से मिथिला भेजी गई है, वह मिथिला के पास पहुँची है। उसके शरीर में तू समा जा और ऐसा कर (कान में कहता है)।

शूर्प०—तुम्हें विश्वास है कि वह अभागा मान जायगा।

माल्य०—यह भी कहीं हो सक्ता है कि इक्ष्वाकु के कुल में कोई भलमंसी छोड़ दे, न कि राम जो ऐसा वैरी का जय करने वाला है।

शूर्प०—तब क्या होगा।

माल्य०—तब इस योगाचारन्याय से राम को दूर खींच कर राक्षसों के पड़ोस में और विन्ध्याचल के खोहों में जहाँ इन का कुछ जानाहुआ नहीं है, हम लोग इन पर सहज ही चढ़ाई कर लेंगे। दण्डकवन के मुनियों को विराध दनु आदि राक्षस सताने लगैंगे। तब यह हो सकैगा कि राम के साथ राजसी बड़ाई तो कुछ रहैगी नहीं, उस समय छलकर राम का उत्साह मन्द कर देंगे। यह तो तुम जानती ही हो कि रावण ने जो सीता को अपनी

रानी बनाने का प्रन किया है सो टल सकता नहीं। सो उस समय भी हो जायगा और बात भी निकल आवैगी।

शूर्प०—भला लक्ष्मण के साथ रहने से क्या होगा।

माल्य०—चतुर भ्रात व्यवहार मैं वीर सो राम समान।

छत्र सम छोड़ै रंड जो, बरिय दुहुन पर ध्यान॥

शूर्प०—मुझे तो दोनों नहीं ठीक जान पड़ते। एक तो दशरथ का लड़का अभी दूर है, तब हम लोगों के पास आजायगा और दूसरे अभी हम से उस से वैर नहीं है तब इसी के कारन बड़ा कड़ा वैर हो जायगा।

माल्य०—वैर तो अब मिली ही है। जिसने सुन्द और उपसुन्द के लड़कों के संगी साथियों को रौंद डाला और ताड़का को मार उससे वैर होने में क्या और चाहिये। एक बात और भी है जिसमें राम और रावण का वैर छुट नहीं सकता। देखो

हम नित सतावहिं लोक रामहि पालिबो संसार है।
तेहि संग होइ न साम जो बधि बन्धु शत्रु हमार है॥
तेहि देव मानत ईस तेहि धनदान मैं दीजे कहा।
नहिं बनै तेहि संग भेद अब इक दंड ही साधन रहा॥

जब ऐसा ही है तो सीता हरने के सेवाय और क्या कर सके हैं। क्योंकि,

बली शत्रु को दंड नहिं दीजै प्रगट जनाय।
छिपि छिपि ताकी हानि नित करिबो उचित उपाय॥

हरो तासु वैदी जब नारी।
देहि जीव, लाज बस भारी॥
कै तन सम रहि तेजबिहीना।
करिहै सन्धि राम ह्वै दीना॥

और

अपमान बस जो खीजि उठै पुलस्त्यवंससंहार को।
तो रोकि है नहिं सिसु हूँ रवि सरिस तेज अपार को॥

है, ज्यों राघवनीत की छाँह देह, काज सम्हारहीं ;
अति बढ़ शूरपनिपुन लखि निज प्रभु के सम्हारहीं ॥

इस बात में बहुत सोचना है ।

शूर्प०—क्या ।

माल्य०—वैसे तुम्हें रावण बहुत मानता है और काम भी सब करती हो वैसे ही तुम से चित को घबड़ाहट रहती है ।

जैसे नहीं कछु दोष कबहूँ जो हमहिं समझावै ।
कबहूँ सो हमरे हाथ हानि नाहिँ दुख पावै ॥
सबै प्रजाहित नित्य करि हरिषय पुनि सोई ।
छोड़ प्रकार सों प्रभु राम निसिचर करै होई ॥
निज स्वामि भाइ जेहि कोपि करि देस निकारो लंकपति ।
सो उचित सोंपि सम साँह सों रहत प्रभु के निकट अति ॥

कुम्भकर्ण दिन रात सोयाही करता है और उसकी बात भी अच्छी नहीं है, सो उसका होना न होना बराबर है । विभीषण कुछ आगम सोचता है और इन्हीं गुणों से लोग उसे चाहते भी हैं । खरदूषण अपने कुल की चाल चल के राजा की सेवा करते हैं । उन्हें कुछ भक्ति तो है नहीं जैसे बछड़ा लगा के गाय दुहते हैं वैसेही वह रावन से धन खींचते हैं । अब प्रजा का चित्त तोड़ दिया गया तो वह भी वैसी ही बात सोचते सुझाते हैं जिससे भला न हो । देखो राजघर तो घर की फूट से बिगड़ा हुआ है राम तो चढ़ाई भर करें सब बिगड़ जाय । किसी ने सच कहा है कि जब किसी पर चढ़ाई होती है तो थोड़ा संकट भी उसके लिये पहाड़ हो जाता है और कुछ बनाये नहीं बनता । विभीषण को ऐंठ देनेही से काम चलेगा । पर भी प्रकाश न हो । छूले छूले कोई दोष लगा के उसे मार डालो या कुचके से उसे मरवा डालो । या बन्दीघर में बन्द कर दो या देश से निकाल दो । सो प्रकाश्य राक्षसों को बहुत बुरा लगेगा । क्योंकि वह उसको मानते हैं

युग देख भी जब चतुर लोग समझ जायँगे तो राम की बड़ाई होगी पर प्रजा जो बिगड़ेंगी तो बहुत बुरा होगा।

खर आदिक सब मातु सनेही।
बिचरहिं जो अरि बाँधौ तेही॥
दूत मिलावत मिलि हैं जाई।
खर कर सोचिय प्रथम उपाई॥

उनसे राम ही का भला हुआ।

शूर्प०—देखिये तो पराधीन होना भी कैसी हेठी है। रावन और खरदूषन का कुल दक्ष है तौभी आप ऐसा सोच रहे हैं।

माल्य०—सपूतों के ऐसे ही काम होते हैं।

शूर्प०—भला बिना खरदूषन के बिभीषन क्या कर सका है।

माल्य०—अरे वह बड़ा चतुर है जब जानैगा कि बिगाड़ होने वाला है तो आप भाग जायगा। हम लोगों को चाहिये कि उस को ऐसा जानैं मानो कोई बात ही नहीं है यह डर निरा झूठा चित्तही का भ्रम है।

क्योंकि—
बालापन की अहै मिताई।
सो मिलिहैं सुग्रीवहिं जाई॥
दई बालि तेहि केहँ अहि जोई।
ऋष्यमूक पर निवसत सोई॥

तब बालि से मिलके उपाय करैगा राम से न मिलैगा क्योंकि तब बाली को बुरा लगेगा।

शूर्प०—और जो कहीं बालिको बैर जनाता देख परशुराम का जीतनेवाला उसे भी मारै तब तो बिभीषण और राम का मिलना असमर्थ हो जायगा।

माल्य०—अरे बेटी

हत्यौ बालि जिन हम कहँ मारा।
बिनसा तब राक्षसकुल सारा॥

सोई बंस माहिं बलि ह्वै है।
सोई राज राम सन ऐहै॥

शूर्प०—(आँखों में आँसू भर के) हाय फिर जो होना है सो होगा।

माल्य०—तो अब आओ बेटी जहाँ हमने कहा है। जब जनक और दशरथ के पास वसिष्ठ और विश्वामित्र न हों तब यह काम सहज ही बन जायगा। हम भी लंका जाते हैं।

शूर्प०—हाय नाना तुम्हें भी दुःख देखना बदा है।

माल्य०—हा खरदूषन तुमहिं हनन पापी मैं भागा।
हाय त्रिसिरन तोहि काज के पथ में त्यागा॥
हा भैया कुम्भकरन भरौ सब संकट तेरे।
हा कैकसि तव पुत्र मरे बीते दिन थोरे॥

(दोनों बाहर जाते हैं)

चौथा अङ्क

[पहिला स्थान—जनकपुर—एक खुली जगह]

(राम और परशुराम आते हैं)

राम—(हाथ जोड़ के)

सेवत ब्रह्मादि पद जाके।
निधि तप नेम ज्ञान विद्या के॥
सोइ निज ओर मोरि यह खोरी।
छमव नाथ विनवौं कर जोरी॥

परशु०—बेटा तुमने अपराध किया कि उपकार किया.
ब्राह्मन की अति पावन जाति और बंस को धर्म चरित्र उदारा।
बुद्धि समेत पुरान औ वेद को ज्ञान निधान समान अपारा

एक तऊ बहु दोष से युक्त हसो इन को जिन एकहि बारा।
केश के काज सों विप्र की प्रीति सों तान हस्यो यद्रोग हमारा॥

राम—क्यों नहीं अपराध किया कि हथियार उठाके लड़ाई तक कर डाली।

परशु०—यही तो तुमको करना उचित था,

अब पातिन्न को दोष कोउ मिटै न और उपाय।
राजा बैठ् समान तब सोधत शस्त्र लगाय॥

राम—मैं आप की बातों का उत्तर नहीं दे सकता। चलिये इधर चलिये।

परशु०—कहाँ चलें भैया।

राम—जहाँ पिता और जनक जी हैं। (दाँत तले जीभ दबाके) जहाँ महात्मा वसिष्ठ जी और विश्वामित्र जी हैं।

परशु०—यह तो बड़ा कठिन काम है। पर राजा की आज्ञा तो टल नहीं सकी। (दोनों बाहर जाते हैं)

[दूसरा स्थान—जनकपुर में एक डेरा]

(वसिष्ठ, विश्वामित्र और शतानन्द के साथ जनक और दशरथ आते हैं। दोनों राजा एक दूसरे को मिलते हैं)

जनक—राजा, बधाई है धन्य हो जो आप के भैया रामचन्द्र ऐसे हैं।

चरित अलौकिक मंगलकारन।
नित गुन लसत न कछु साधारन॥
नहिं केवल सुख हेत हमारे।
हैं जग दुःखनिवारनहारे॥

वसिष्ठ—(विश्वामित्र से मिल कर) भाई कौशिक।

यदि हमरिहु आसीस सों चरित कीन्ह जो राम।
हम सब त्रिभुवन हूँ भये तेहि सन पूरनकाम॥

विश्वा०—ऐसो महिमा तो बड़े पुण्यों के प्रभाव से होती है हम इस के लिये कहाँ तक हर्ष कर सके हैं

दशरथ—महात्मा कौशिकजी ऐसी बात न कहिये,

नाथहु सुखद सुहृद दिनेसा ।
भये जिते रविवंश महीशा ॥
कीन्हों तासु भक्ति नव पूजा ।
कुलदेवहि जिन आन न दूजा ॥
सो तपखानि वसिष्ठ मुनीसा ।
दई जो नित प्रति लखि असीसा ॥
तिनहीं कर यह भयउ प्रभाऊ ।
जो आपहु प्रसन्न ऋषिराऊ ॥

वसिष्ठ—सच है, विश्वामित्र जी ऐसेही हैं ।

अतिशय की मर्यादहु सों अति ।
जहाँ न होत वचन चित की गति ॥
राजत सो तपतेजनिधाना ।
को जग विश्वामित्र समाना ॥

विश्वा०—महात्मा वसिष्ठ जी,

तुम विधिसुत तुम आँगिरस गुरु विद्यातपखानि ।
जस बरनौ तैसहि भयौ सत्य तुम्हारी बानि ॥

रामचन्द्रजी ऐसे हैं तो कौन से अचरज की बात है. रामचन्द्र के पिता तो महाराज दशरथ हैं ।

रविसुत मनु के वंश में भये जे पुण्यसरूप ।
तुम सन नित उपदेश लहि जग पाल्यो जो भूप ॥
जासु जगत पावन चरित, तिनकर यह पद पाय ।
क्षत्रियवर महिपालमणि राजत गुणसमुदाय ॥

और शत्रुदमन के काज इन्द्र जिन जग्य पकारा ।
महतन के जो ईश विश्व जाके बस सारा ॥
सेनाजीतनहार असुरघालक रनधीरहि ।
बसा अनेक न बार समर यह नरपति वीरहि ॥

से महाराज का लड़का ऐसा क्यों न हो। इसमें क्या अच

जिन जीतो शशिनाथ देवसेना के साथा।
बाँध्यो सो दशसिरहिं युद्ध मह हँसत गाथा॥
तेहि कर मानमहार जासु जग महँ जस छावा।
महावीर तेहि जीति काहि नहिं राम हरावा॥

दशरथ—यह भीड़ क्यों इधर आ रही है।

विश्वा०—भैया रामचन्द्र परशुराम के साथ यहाँ आ

वीरतेज तन लसत सुहाए।
मुनिआदर निज सीस झुकाए॥
हरि भृगुपतिमद लाज जनावत।
शिष्य सरिस निज गुरुहि मनावत॥

(राम और परशुराम आते हैं)

परशु०—महात्मा लोगो,

रामवीर अतिधीर यह शील नेहगुनखानि।
जाको आज्ञा सिर धरत हारि परशुधर मानि

दोनों राजा—वाह, वाह, कैसे सुजन हैं।

राम—राम आप लोगों को प्रणाम करता है।

सब—आओ, आओ भैया (सब गले लगाते हैं)।

परशु०—महात्मा वसिष्ठ जी विश्वामित्र समेत आप के
का लड़का प्रणाम करता हूँ।

राम दीन्ह जो दंड मोहिं रह्यों दंड के जोग
नहिं यहि में सन्देह कछु, कहौं सत्य गुरुलो
बात न मानि बड़ेन की कीन्हों जो बड़ पाप
ताके छुटन उपाय गुरु बेगि बतावैं आप॥
आदहि में तुमहीं रचे धर्म कर्म आचार।
मनु आदिक तुमरेहि वचन सों जानत अवह

वसिष्ठ—भैया तुम्हारा तो श्रोत्रियों के कुल में जन्म हुआ

तुम्हहिं सजन मयोइ भिखारी ।
मधै रहि हम कछुक दुखारी ॥
मुहलोग कहुन सिव करहीं ।
कबहुँ न नाथ हिये नहिं धरहीं ॥

विश्वा०—रामचन्द्र ने तुम्हारे पाप सब दूर कर दिये । धर्मशास्त्र में लिखा है कि राजसूय ही पाप का प्रायश्चित्त है । महात्मा वशिष्ठ जी क्या कहते हैं ।

राम—आपही लोगों ने धर्म रचा है, तो आप के वचन गंभीर और पावन क्यों न हों ।

दश०—महात्मा परशुराम जी ।

सहज पवित्र शरीर, नहिं पावन कर काज तेहि ।
पावक तीरथ नीर, शुद्ध और ते होत नहिं ॥

परशु०—धरती माता तू हमें अपनी गोद में जगह दे ।

जनक—महात्मा जी जो आप प्रसन्न हैं तो इस पवित्र आसन पर बैठ कर हमारा घर पवित्र कीजिये ।

परशु०—आप राजर्षि और सूर्य के शिष्य याज्ञवल्क्यजी के शिष्य हैं, आप की जो इच्छा है वही किया जायगा ।

(सब बैठते हैं)

दश०—तुम रहत मुनि तप करत नित अति दूर पुर अरु ग्राम
हम सब गृहस्थों में लहत अवकाश नहिं निज काम तें ॥
तवचरनपंकजदरस कर निज हिय मनोरथ जो रह्यो ।
निज धन्य पुण्य प्रभाव हम सोइ आजु बहु दिन पर लह्यो ॥

पग पदे नखनाति जासु गुन तिन कर कौन बखान ।
का कोउ तेहि दै सकै जग दीन्हो जिन दान ॥
तपसिन को यद्यपि नहीं कछु सेवक कर काज ।
तदपि किंकर सम कृतन मद्भ जानिय मोहिं मुनिराज ॥

परशु०—आप लोग ऐसे ही योग्य हैं इसमें क्या अचरज है ।

तेज का धाम स्वानन्द वैभु जो राजत हैं नित ज्योतिनिधान
सो रवि सों तव वंश चल्यो, तो कवै केहि भाँति को ताहु ...
लोक यथारथ राजऋषी नित यज्ञ करैं सब वेद विधाना।
ज्ञान औ तेज की राशि सो धर्म में जासु गुरु हैं वशिष्ठ महा
...र साध्यो सुरपतिमखरक्षा नित प्रजन तुम्हारा।

लसत सातहूँ द्वीप भूप वर तव जग सारा ॥
उज्वल कीर्ति के खंभ जासु आवारिधि सागर।
कहँ लगि करैं बखान चरित तव, भूप गुनागर ॥

वशिष्ठ और विश्वामित्र—यह भी लड़के ने सीखा है।

परशु०—भैया रामचन्द्र हमैं भी आज्ञा दो हम वन को ...

विश्वा०—हमैं भी अब छुट्टी दीजिये।

रघुनिमिकुल कर सहित उछाहा।
देखे लरिकन केर बिवाहा।

भृगुपतिमदभंजन—(इतना कह कर मुक रहता है)

भृगुपतिविदिततेज श्रीरामहि।
सुख सन देखि जात निज धामहि ॥

दश०—भैया रामचन्द्र तुम्हारे गुरु महात्मा विश्वामि...
ते हैं।

विश्वा०—(आँखों में आँसू भर के राम को गले लगा के)
...रा भी जी तुम्हैं छोड़ने को नहीं चाहता पर क्या करैं

विघ्नन सन नित प्रति रहत लसै गृहस्थी धर्म।
रोकत सकल स्वतन्त्रता अग्निहोत्रगृहकर्म ॥

वशि०—आप का आना जाना आपही के आधीन है।

विश्वा०—महात्मा जी तुम हम को रोकते हो तो चलो
। दोनों सिद्धाश्रम को चलैं तुम को आगे करके जो हम ...
मधुच्छन्दा की मा बहुत प्रसन्न होगी।

वशि०—क्या आपका इतना भी अधिकार हमारे ऊपर नहीं

दोनों राजा—ब्रह्मर्षियों की भेंट कैसी सुहावनी होती है

जानत हैं हम एक रस महिमायुत अहेह।

नीको लगै निरखत कौन भाग जो होइ।

(परदे के पीछे)

रामचन्द्र की बहू आप लोगों को प्रणाम करती है।

ऋषि लोग—बेटी जानकी,

रघुनाथ के संग विनय नित करत प्रकासा।
जय जय तव पति और हरै ताको सब त्रासा॥
क्षत्रियकुलसिरमौरनारि मिथिलेशकुमारी।
पूजा मन मन ध्याय करै सब शक्ति तुम्हारी॥

राम—(आप ही आप) हम तो चाहते हैं कि यह राक्षसों
। उनकी जड़ खोदने को पहुँचें।

दोनों ऋषि—आप लोगों के मनोरथ पूरे हों। (सब उठते है

परशु०—महात्मा लोग जमदग्नि का लड़का प्रणाम करता है

वसि० और विश्वा०—

रहै शान्त तव चित्त लहि पूरन जोतिप्रकास।
छोड़ैं मन की वृत्ति नहिं शुभसंकल्पविलास॥

(राम और परशुराम को छोड़ सब बाहर जाते हैं)

परशु०—(थोड़ी दूर चलकर) भैया रामचन्द्र यहाँ तो आओ

राम—(पास जाके) कहिये क्या आज्ञा है।

परशु०—धारयो जो कोदण्ड मैं हनि जग क्षत्रसमाज।
सो यहि अवसर ह्वै गयो बिन कारन बेकाज॥

परशु का काम ईंधन काटने का है सो रहेगा।

पावन नदी तीर दंडकवन।
रहत करन हित तप जो मुनिगन॥
विचरत फिरत लहु सन आवत।
पापी निशिचर तिनहिं सतावत॥

तिन के रक्षन कर अधिकारा।
यहि धनु भंग अब भयो तुम्हारा ॥ (धनुष देता है)

राम—(धनुष लेकर) आप की जो आज्ञा।

परशु०—(छलके आँसू भर के) अब लौट जाओ भैया।

(बाहर जाता है)

राम—(आँखों में आँसू भर के) महात्मा परशुराम जी तो चले गये। हम भी किसी उपाय से दंडक बन चलैं तो अच्छा। भला हमारे माता पिता यह कैसे होने देंगे जो हमें इतना मानते हैं।

भृगुपति डारो अस्त्र और मैं औरन आधीन।
निरिखहु निठुर बनाइहैं तपसीजन अति दीन ॥

(परदे के पीछे)

भेजी मझिली माय की चेरि मन्थरा नाम।
आई देखन को तुम्हैं अवधपुरी से राम ॥

राम—माता पिता की प्रीति भी कैसी है। ऐसी ही रीति से लड़कों के बिछुड़ने का दुख मिटाते हैं। भैया लक्ष्मण ले आओ।

(लक्ष्मण और मन्थरा के भेस में शूर्पणखा आती है)

शूर्प०—(आप ही आप) मैं तो शूर्पणखा हूँ मन्थरा के शरीर मे घुसी हूँ। समय तो अच्छा है, वसिष्ठ विश्वामित्र भी चले गये है। अरे यही तो परशुराम का जीतने वाला छत्री का लड़का रामचन्द्र है। (देख के) अरे इसकी सुन्दरताई तो आँखों को रसायन सा सुख देती है मानो सारी सोभा इसी के शरीर में है। अरे इसे देख तो बचपन ही में रांड़ हो जाने से संसार का सुख सब छोड़ दिया और धीरज और भलमंसी से अपना जी पक्का कर लिया तो भी मेरा चित कैसा हो रहा है।

राम—(विनय से) मन्थरा, अम्मा अच्छी हैं।

शूर्प० भैया बहुत अच्छी हैं भैया तुम्हारी मझली मा ने कहे

और तुम्हें ले गले लगा के यह कहला भेजा है "बहुत दिन हुये महाराज ने दो बर देने को कहे थे, सो देव तुम हमारी ओर से कहना। यह तुम्हारे पिता के नाम चिट्ठी है इस में सब लिखा है"

लक्ष्मण—(लेकर पढ़ता है)

"बर एक ते मेरो सुत भरत अधिराजपद सब पावही" ।

(आपही आप) बड़े दादा के होते छोटे दादा भरत के लिए राज मांगती है ! क्यों !

(प्रकाश)—"बर दूसरे बन जाहिं दंडक राम बार न लावहीं"

(आप ही आप) हाय मा दादा को तू बन भेजना क्यों मांगती है।

(प्रकाश)—"तहँ बाम चौदह बरिस लगि मुनिवेष धीर धरे करैं।
सिय लखन हौं सँग जायँ जन परिवार सब अब परिहरैं॥

(आप ही आप) हाय पापिनि चंडालिनि,

सदा चाहिहु माय माय माय तोहि कहत हौ।
तैं सब आजु भुलाय कहा हाय पापिनि कियो॥

राम—वाह कैसी कृपा हुई है।

नहिं जान आज्ञा मिली जहँ लगि हिय घबरात।
छूटो नाहीं साथ हु भाई सो संग जात॥

लक्ष्मण—बड़ी बात कि दादा ने अपने साथ रखना मान लिया।

राम—मन्थरा हम तैयार हैं।

शूर्प०—संसार भी पूजा के जोग है जहाँ ऐसे ऐसे कल्पवृक्ष होते हैं। (बाहर जाती है)

लक्ष्मण—मामा युधाजित भरत के साथ आप आ रहे हैं।

राम—तो चलो मिलें अच्छी बात है, पर बुरी भी है।

चलत भरत मेरे बिना आगे परैं न पाय।
मेरे दुखसों सो दुखी कैसे देखो जाय॥

(सब बाहर जाते हैं)

[तीसरा स्थल — महाराज दशरथ का डेरा]

(महाराज दशरथ और जनक बैठे हैं युधाजित और भरत आते हैं)

युधाजित — सुनिये महाराज आप के सब राजभक्त्री एक मत हो के आप से बिनती करते हैं :

सो ब्राह्मणवर दारुन हारा।
वीर घोर जो पुत्र तुम्हारा॥
अब निज नाथ भाव श्रीरामा।
प्रजा होय सब पूरनकामा॥

दश० — भाई जनकजी :

कहैं प्रजा यह करन को निज कल्यान विचार।
विश्वामित्र वसिष्ठ नाहिं जिन कहँ राम पियार॥

जनक — ते ऋषि परम सुजान, सुख पैहैं पुनि काज यह।
जानत वेदविधान, वामदेव मुनि हैं इहाँ॥

दश० — जो ऐसा ही है तो फिर यह परशुराम के जीतने का उत्सव अभिषेक का भी उत्सव हो जाय।

(राम और लक्ष्मण आते हैं)

राम — अब यह क्या हो रहा है।

दश० — सुमंत्र जाओ अभिषेक की सामग्री इकट्ठा करो और जो कोई जो कुछ माँगे उसे जितना माँगे उतना दो।

राम — (आगे बढ़ के हाथ जोड़ के) मैं माँगता हूं।

दश० — भैया क्या ? किस के लिये ?

राम — कहे जो तुम वर देन को सो अब मंझिली माल।
चाहत है, तेहि देइ अब कृपा कीजिये तात॥

दश० — साँचे नित रघुवंस नृप यहि मैं कौन विचार।
तुम जु सुत तौ प्राणहूँ केहि कहँ देत पियार॥

राम — भैया पढ़ो तो।

(लक्ष्मण पकड़ता है)

दश०—हाय यह क्या हो गया ! हाय बड़ा अनर्थ हुआ ।

(दोनों राजा बेसुध हो कर गिर पड़ते हैं)

राम और लक्ष्मण—पिता जी, जागो उठो ।

जनक—(जागकर)

रविकुलतिलक भूप की रानी ।
जननी रामचन्द्र गुनखानी ॥
राउन कहँ करि पुनि सोई ।
समुझि मोहि अचरज बड़ होई ॥

राम—पिता, सत्यप्रतिज्ञा आप जो दिय तुम कहँ जा राम ।
विनय मानिये मातु कहँ कीजिये पूरनकाम ॥

दश०—हाय मैं क्या करूँ ।

जनक—हा भैया रामचन्द्र भैया लक्ष्मण !

कीन्ह जो वृद्ध ककुत्स्थ नृप है पुत्रन कहँ राज ।
सो बनबास तुमहिं मिल्यो बालपनहि महँ आज ॥

ऐ जानकी तू धन्य है जो बड़ों ही के कहने से तुझे पति के साथ रहना है ।

दश०—हाय बहू तुझे कंगन पहिनाये हुये हम लोग राक्षसों को भेंट कर रहे हैं ।

(दोनों बेसुध होकर गिर पड़ते हैं)

राम—पिता तो दुःख में पड़े अब क्या होगा ।

लक्ष्मण—हाहा करुणा और मोह तो इतना बढ़ गया ! अब क्या करें, भरत की मा ने कहला भेजा है कि देर न लगाना । सो अब आप भी मोह में न पड़ कर घबड़ाइए ।

राम—वाह भैया, वाह, धर्म में पक्का ऐसे ही रहना चाहिये । तुम्हारा मन संसार के लोगों का सा नहीं है सो जाओ भैया जानकी को ले आओ ।

(लक्ष्मण बाहर जाते हैं)

भरत—मामा जी तुम्हारे घर की यही रीति है।

युधाजित—भैया मेरे तो कुछ समझ में नहीं आता।

परत मृत्युमुख नाथ पुत्र द्वै बन कहँ जाहीं।
भरत बहु कहँ बलि समान राक्षसगन माहीं॥
होत शोक बिन मरन सजल महँ परत पिनाकुल।
मेरी बहिन को पाप करे सारो जग व्याकुल॥

(लक्ष्मण सीता समेत आते हैं)

लक्ष्मण—दादा आर्या आई।

राम—अच्छा इधर आओ।

(लक्ष्मण और सीता समेत बाप और ससुर की पैकरमा करते हैं)

मामा जी।

सुत सनेह घबराय हैं सबै माय दोऊ तात।
धीरज तिनहि दिवाइये हम सब बन कहँ जात॥

(भरत से)—भैया पिता को जगाओ।

(सीता लक्ष्मण राम बाहर जाते हैं)

युधाजित—(घबड़ा कर) हाय लड़कों को बन में छोड़ दूँ।

भरत—(पीछे चलकर) मामा हाय मैं क्या करूँ। पीछे दौड़ता है।

(दोनों बाहर जाते हैं)

(चौथा स्थान — एक बन)

(राम सीता लक्ष्मण और युधाजित आते हैं)

युधाजित—भैया रामचन्द्र ठहरो देखो तुम्हारे पीछे भरत दौड़ा आ रहा है।

(भरत आते हैं)

राम—यह क्यों आ रहे हैं। इन्हीं को तो प्रजा पालने का काम माता पिता ने सौंपा है।

भरत—तो यह काम लक्ष्मण या शत्रुघ्न कर लें

राम—इसमें किसी के रुचि की बात है।

भरत—हमारी तो यही रुचि है।

राम—अरे मेरे जीते तू या कोई और मा बाप की आज्ञा टाल सकता है।

भरत—हाय मुझ अभागे को छोड़े देते हैं।

(बेसुध होकर गिर पड़ता है)

सुधा०—भैया धीरज धरो जागो।

भरत—(सांस लेकर) मामा जी मुझे संभालो।

सुधा०—भैया यह कहो। (भरत के कान में कहता है) भैया रामचन्द्र, यह कहते हैं कि शरभङ्ग जी ने जो खड़ाऊँ की जोड़ी तुम्हारे लिये भेजी थी उसे दे दीजिये।

राम—(उतार कर) लो भैया!

भरत—(सिर पर रख कर) दादा—

राम—(गले लगा कर) भैया तुम्हें हमारी सौंह है लौट जाओ पिता को जगाओ।

भरत—मैं अब, सिंहासन धरि पादुका नंदिग्राम करि वास।
पहिरि चीर महि पालिहों प्रभु लौटन की आस॥

(सीता और राम की पैकरमा करता है)

लक्ष्मण—दादा भरत लक्ष्मण प्रणाम करता है।

भरत—(गले लगा के आंसु गिराता है)

राम—भैया जाओ पिता को धीरज धराओ।

भरत—हाय वह तो अभी तक नहीं जागे। (बाहर जाते हैं)

सुधा०—भैया रामचन्द्र,

धावत हैं इन सङ्ग सकल घरकाज बिसारी।
उठे अन्नाहक रोइ विकल सब पुर नर नारी॥
औरै कछु भा नगर धार सम दृग जल बरसत।
भई कीच मगमाहि वृष्टि के दिन सम दरसत॥

राम—मामा जी लौट जाओ, भरत तुम्हीं को सौंपते हैं।

सुधा०—भैया मुझे भी अपने पीछे चलने दो।

राम—यह आप क्या कहते हैं आप बड़े हैं कि हमारे पीछे चलने वाले हैं। मा की आज्ञा है कि तीन ही जने वन जांय।

सुधा०—हाय क्या मैं अकेला जा रहा हूँ देखो लड़के बूढ़े सब पीछे दौड़े आते हैं।

होम धेनु को छिन किते आगे निज कीन्हे।
गुरुनी पीछे चलत आगि निज कर महँ लीन्हे।
सब के पात्र बटोरि कंध पर बाँधि उठाये।
वाजपेय के यज्ञ लहे कर छत्र लगाये॥
सब प्रेम विवश व्याकुल सकल गोधन के सँग धावहीं।
लखि राम परत तब देह पर निज निज छत्र बढ़ावहीं॥

राम—मामाजी आप लोगों को चाहिये कि लड़कों के अधर्म से बचाइये आप हम पर कृपा करके लौट जाइये और इन सब को लौटा दीजिये।

(पैरों पर पड़ता है)

सुधा०—भैया उठो उठो। मैं जाता हूँ प्रजा को भी लौटा दूँ।
ए विदेहनन्दिनि सती, ए भट लखन कुमार।
विदा होत पापी, रहै नित कल्यान तुम्हार॥
(रोते हुये लौट के) अरे
युग युग यह पावन चरित गावत नित उठि भोर।
तरैं नारि नर जगत के छूटि पाप सब घोर॥

(सब बाहर जाते हैं)

(पांचवां स्थान—जनकपुर महाराज दशरथ का डेरा)

(जनक और दशरथ बेहोश पड़े हैं)

जनक—(जाग कर चारों ओर देख के) हाय लुट गये

दशरथ—(जाग कर) भैया रामचन्द्र न जाओ,

कठिन पीर ब्यापै तन माहीं।
चलैं प्रान कछु सूझत नाहीं॥
उतर देहु मोकहँ समुझावहु।
निज मुख चन्द्र मोहि दिखरावहु॥

(पागलों की नाईं) हाय मैं अभागी कहाँ जाऊँ।

(व्याकुल दशरथ को जनक और भरत उठा ले जाते हैं)

[छठा स्थान—वन]

(राम लक्ष्मण जानकी समेत आते हैं)

लक्ष्मण—दादा शृंगवेरपुर के राजा निषादपति ने आप से बिराध राक्षस के उस देश में रहने की बात कही थी।

राम—चलो बिराध को मारने के लिये प्रयाग के निकट मंदाकिनी के किनारे चित्रकूट पहाड़ पर चलैं। उस तीरथ पर बहुत से मुनि रहते हैं। वहाँ राक्षसों को मार दंडक में ही जन-स्थान जायँगे जहाँ गृध्रराज रहते हैं।

(सब बाहर जाते हैं)

पाँचवें अंक का विष्कम्भक

[स्थान—पञ्चवटी]

(सम्पाति आता है)

संपाति—हो न हो आज भैया जटायु हम से मिलने को मलयागिरि के खोह के घर में आता है। उसी से

खोलैं दिसान समेटत बार पसारि अकास छिपावत हैं।
मेघन सों बरसावत नीर छुटी बिजुरीहि हिलावत हैं॥
टूटत शैल प्रहार चहूँ दिसि पाथरखंड उड़ावत हैं।
श्येनी के पुत्र जटायु को आगम हीलत पङ्ख जनावत हैं॥

लागे प्रचंड बयारि तरंग उठै भड़कै जल बाढ़त ज्वाला।
छेदन बायु के बेग से जाय हिलाय दयो धुनि व्यापि पताला॥
विश्व सँभारे जो आदिबराह भयो तिनके मुख शब्द कराला।
गर्जत है सेाइ मेघ समान लगे जब लेाक सँहारनकाला॥

(जटायु आता है)

जटा०—कावेरी जेहि चहुंदिसि घेरे।
उतरौं शिखर मलयगिरि केरे॥
तहाँ बसत खगपति बड़भाई।
लगे पङ्ख गिरिवर की नाई॥
मेरेहु उड़े थकावट लागत।
मेरे पङ्ख उद्यम निज त्यागत॥
प्रबल काल की शक्ति, बुढ़ाई।
शक्ति सकल तन केरि नसाई॥

यह तो मन्वन्तर के पुराने बड़े भाई गृध्रराज सम्पाति हैं। भाई की प्रीति भी कैसी है।

दूर उड़न को खेल करत एक युग महँ आगे।
पहुंचि गयों रविपास जरन तब मो पख लागे॥
मोहिं बालक तब जानि झपटि निज पख फैलावा।
कीन्ह दया सम्पाति भ्रात तब मोहि बचावा॥

(आगे बढ़ के) भाई काश्यप। जटायु प्रणाम करता है।

सम्पाति—आओ भैया।

तोहि गीधन अधिराज लहि धन्य हमारी माय।
विनता ज्यों दादी रही गरुड़ सरिस सुत पाय॥

(गले लगा के) भैया जटायु भला बहुत दिन बीतने से रामचन्द्र जी को जेा बाप के मरने का सेाक हुआ था वह कुछ घटा ?

जटायु—मन स्वभाव से धीर अति मुनिगन को सतसङ्ग।

प्रजापालअधिकार पुनि करन सोक सब अंत ॥

सम्पाति—इहि विराध के नाश सों कहौ गीध यह बात।

श्री सरभंग मुनीस के आश्रम लौं रघुनाथ।

हैन कीन्ह तन आगि महँ जिन तन मुनि सब राम।

गये सुतीछन आदिकन देवमुनिन के धाम॥

जटायु—ठीक है, अब अगस्त्य मुनि के कहने से रामचन्द्र पंचवटी में रहते हैं।

सम्पाति—(देर तक सोच के) हाँ जनस्थान में गोदावरी के किनारे पंचवटी एक जगह है। मेरा काम भी बहुत रहता है फिर भी बहुत हुये इस से सुध नहीं रहती।

छलन काज बलिराज लीन्ह वामनवपुधारी।

जलत ध्वजा नभ गंग जहाँ लगि पग हरि धारी।

लोकालोक पहार लाँघ सागर छोरा।

कलह आदि जहँ लागि रह्यो परिचित सब मोरा॥

जटायु—वहाँ एक बार रामचन्द्र जी से अपना मनोरथ पूरा कराने शूर्पणखा पहुँची।

सम्पाति—हाय मेरी निर्लज्जी!

श्रेता जाको तेरहौ जो छुग सिर अनेक।

ताहि लजावत बालकौह लाज न आई नेक॥

जटायु—नाक कान और ओंठ हरि देहि कर लखनकुमार।

कुलकंधर के सीस पर कीन्हौं चरनप्रहार॥

सम्पाति—तो कुछ राक्षसों ने चढ़ाई की थी?

जटायु—जी हाँ। पर एक ही रामचन्द्र जी ने

राक्षस की सेना रही चौदह सहस जुझार।

खर दूषन त्रिसिरा तहाँ रन कीन्हें संहार॥

सम्पाति—बड़ा अचरज है। और अचरज की कौन बात है दश-रथ ही के तो लड़के हैं। अब तो मुझे जान पड़ता है कि वह मारे

दैव का ठिकाना हुआ। मैं इस से बहुत घबड़ाता हूँ। मैया अब तुम सीता और राम लछमन को छन भर भी न छोड़ना।

सखी बहिन की होत मनुजहाथन सन बड़ रति।
सुनि बंधु को नास लहै कैसे निश्चपति॥
रहैं निकट मद्‌अंध प्रभु छल बल अधिकारी।
लरिकन की है सावधान करियो रखवारी॥

हम तो समुद्र की तीर पर नितकर्म कर के कल्यानकारनेवाले मंत्र जपेंगे। (बाहर जाता है)

जटायु—(उड़के)

सिमिटत सावन प्रलय बतासा।
धावत सुरकत मनहुँ अकासा॥
प्रलय शैल सम चलि पहुँच्यों तहँ।
गिरिवट लगे हरे घन बन जहँ॥

देखो यह प्रस्रवण नाम पहाड़ जनस्थान के बीच में है जिस का नीला रंग बार बार पानी के बरसने से मैला सा हो गया है और जिस की कन्दरा घने पेड़ों के अच्छे बनों के किनारे गोदावरी के हलोरों से गूँज रही है। (देख के)

गये दूरि मृगसँग रघुनन्दन।
सोइ दिसि जात लखन व्याकुलमन॥
जोगी गयो कुटी महँ कोई।
हाय हाय रावन यह होई॥

हा बड़ा अनर्थ हो गया।

जीते सहस पिशाचमुख खच्चर निसिचरराय।
रथ सीतहिं बैठाय के यह पापी कहँ जाय॥

रावन! रावन!

जो सृष्टि के प्रथकाल मुनिवर वेद की रच्छा करी।
तुम होय तिन के वंस महँ करि ब्रीतब्रत मनताम हरी॥

नद रामचरित नाटक

नर कोउ, जिन त्रैलोकतीननहार की वहनी नई ;
वह निज कुलकलंककारन नाहु मनि कैसे सई ॥
और, वह मेरी बात सुनता ही नहीं. अरे पापी राक्षस खड़ा रह,
चोंच में तेरे कठार विदीर्ह के कोमल देह की नाड़ी हिलाई ।
तिसी और ने कहुँ निहोहि लोहि निमालिके श्रोनित रन्ध्र बहाई ।
तोरि के जनुनाले पैरै नखौं नख हाड़न अंग सबै बिलगाई ।
काहु निहाइन ओलर बाइके खाइहैं इथेली को पूर अघाई ॥

(बाहर जाता है)

पाँचवाँ अङ्क

[स्थान—दण्डक वन]

(लक्ष्मण आता है)

लक्ष्मण—हा भाभी कहाँ हो। हाय मारीच ने भाई को कैसा दुख दिया।

हद धरे वह क्रोध के चलत शोक की आगि ।
दुखसन सँभरत देहदुख ज्वाल हिये मह लागि ॥
और अथा सरिस जँस कुटिल देखि करिये अनुमाना ।
त्यों घोर वन देहगेह मह कोपकुलाला ॥
उठत धूम ज्यों सिन्धु मध्य धधकत बड़वानल ।
छिपो वज्र ज्यों बीच लसत बिजुरी जिमि बादल ॥

(राम आते हैं)

राम—अपमान कील समान हिय मह गड़त मन धीरज हरै ।
मन डूबि लाज गलानि घोर अँधेर मह यहि छन परै ॥
पितुमित्र की वह बिपति चेतत दुख सन सब तन धरै ।
पुनि हाय दसा बिचारि सिय की चित्त माहिं धीरज धरै ॥

लक्ष्मण दादा तुम तो ऐसे काम करते हो जो संसार में कोई कर सकता ही नहीं, अब बिपत्ति में धीरज छोड़े देते हो

राम—भैया, राम ने जो किया सो संसार के ऊपर ही

तेहि तीय कहँ अनय हरि जिन भुजबल दीन्हा।
यह नहिं मैं अपमान भानुबंसिन कर कीन्हा॥
बचो रह्यो जो शोच होन हूँ लोकसंहारा।
मेरे कारन आज सोऊ परलोक सिधारा॥

हाय गिद्धराज जो फिर तुम ऐसे लोग कहाँ मिलेंगे तुम से पावन थे।

लछमण—हाय मुझे मरते समय उनकी बात याद आती

बन बन ढूंढत फिरत हो जेहि तुम जाड़ो समान।
रावन दुलौहि हरे सो सीता में प्रान॥

तना कह कर बेचारे परलोक को सिधारे।

राम—भैया, इन बातों के कहने से छाती फटती है।

लछमण—तो अब यही करना है जिस से उस पापी लो भांति लें।

राम—हा क्या हो सकता है जो इतनी बड़ी आपद् कर सकै।

मेरे मन पहिलेहि रह्यो राक्षसबधनबिचार;
औरहु कारन से रह्यो तिनकर कोप संहार॥
केवल रावन के हने नाहिं क्रोधाग्नि बुझाय;
करिहौं ताके बंसकर नास न और उपाय॥

अ भी भैया, सिमिट होय अति गाढ़ हिये भीतर घुस जावै
जारत बारहिं बार देह ज्वाला भड़कावै॥
भीतर ठौर न पाय ज्वाल बाहर जनु आवै;
सिधुहि बाड़व आगि सरिस यह सोक जरावै॥

लछमण—चलिये, यह तो दक्खिन की ओर जंगल फैले हुए हैं घबड़ाये हुये हिरन के झुण्ड फिर रहे हैं और जहाँ भट् वाली पशुओं से छोड़े भरे हुये है उसी ओर चलें।

मह व्याख्यानमाला

राम—जनस्थान के इधर का टुकड़ा तो हम लोगों ने कभी नहीं देखा।

लक्ष्मण—जब से हम लोगों ने गिद्धराज जी का क्रिया कर्म तब से तो पंचवटी से निकले बड़ी देर हुई। और अब तक बहुत दूर हो गया अब तो यह बड़े डरावने जंगल हैं और ही यही जनस्थान के पश्चिम दक्षिण वन का वह भाग है जहाँ कबंध रहता है।

राम—अजी उस पापी सोने के मृग का देखना आदि (चरने के पीछे) अरे दौड़ो दौड़ो एक पापी राक्षस जंगल में एक स्त्री को खींचे लिये जाता है बचाओ अरे बचाओ!

शबर जाति की तापसी मैं श्रमणा मम नाम।
तपवन रहत मतंग के आश्रम ढूँढन राम॥

राम—भैया लक्ष्मण जाओ जाओ।

लक्ष्मण—मैं अभी जाता हूँ। (बाहर जाता है)

राम—हा, प्राणप्रिया तुम हो कहाँ बोलो बेगि सुनाइ।
रोइ भुलावैं दुःख निज सोउ नाहिं सुलभ उपाइ॥
बिना दोष रावन बध्यो मोहिं कलंक लगाय।
भलो कीन्ह निज हाथ यह पहिले बैर बढ़ाय॥
(श्रमणा शबरी और लक्ष्मण आते हैं)

लक्ष्मण—छूरी सम निज दाँत सों काटि काटि पशु खात।
कुशा सम मोहन रक्त छिन छिन टपकत जात॥
सकल योजनाबाहु की देह कुढंग बिलोकि।
दादा सम अति धीरहू सकते हँसी न रोकि॥

सबरी जी, दादा वह बैठे हैं।

शबरी—महाराज की जय हो।

राम—हमें क्यों ढूँढ़ रही हो?

शबरी—जब खर दूषण को आप ने मारा तभी विभीषण अपने भाई बन्धुओं को छोड़, सुग्रीव के मित्र होने से ऋष्यमूक पर्वत पर निर्वासित बना आया है उसने आप को यह चिट्ठी दी है।

(चिट्ठी देती है)

लक्ष्मण—(लेकर पढ़ता है) स्वस्ति श्री महाराजाधिराज राम चन्द्र जी को विभीषण का प्रणाम।

छोड़े जाके साथ तेहि कोई गति संसार।
होय धर्म की वृद्धि दे आप धर्मरखवार॥

राम—भैया कहो तो इतने बड़े मित्र लंकेश्वर महाराज विभीषण को उत्तर क्या दूं ?

लक्ष्मण—जब आपने उन को प्रत्यक्षित लंकेश्वर कहा तो अब और संदेसा क्या होगा।

राम—तुमने ठीक कहा।

शबरी—हम पर बड़ी कृपा हुई।

लक्ष्मण—श्रमणा जी कहिये विभीषण से आपको कुछ सीता जी की भी सुध मिली है।

शबरी—अभी तो नहीं मिली। जब वह पापी राक्षस सीता को लिये जाता था तब यह दुपट्टा जिस पर अनसूया का नाम लिखा है गिर पड़ा था सो इन लोगों ने उठा लिया।

राम—हाय प्यारी बन में तूही एक प्यारी संगिनी थी! हाय!

लक्ष्मण—शबरी जी किसने उठाया और क्यों उठाया।

शबरी—ऋष्यमूक पहाड़ पर रामचन्द्र जी को मानने वाले सुग्रीव विभीषण और हनुमान जी ने।

राम—अजी इन महात्माओं को तो देखना चाहिये। इन की महिमा तो संसार में उजागर है और हम पर बिना कारण के इतनी कृपा करते हैं। यह कपड़ा जो सीता का गिरा है उसे भी देखना चाहिये तो चलो ऋष्यमूक ही चलें।

शबरी—इन्हीं महाराज। (सब बाहर जाते हैं)

(दृश्य स्थान—वृक्ष तल)

(शबरी राम और लछमन आते हैं)

लछमन—हनूमान तो बड़े वीर प्रसिद्ध हैं सुनते हैं कि जब उनका जन्म हुआ था तभी से ऐसी वीरता की कि देव और असुर दोनों चकड़ा गये। और वह भी सुना है,

जैसो जगत वायु है जितो वीर मघवान।
बली बालि जैसो विदित तितो वीर हनुमान॥

शबरी—जी ऐसे ही हैं, यह वानरों के बूढ़े यूथपति केसरी और अंजनी के पुत्र हनूमान जी पवन देवता के वीर्य से हैं; और हनूमानकी कथा अकेले ही है।

सागरको जल गोखे के नीर समान जु चिल्लुन पीके सुखावैं
थोरेहि यत्न से मूलरके फल से गिरिखंड उठाय बहावैं।
बीज के रूप समान ब्रह्माण्ड समस्त जो एकहि बार हिलावैं
ऐसे कठोर बानर वीर सुरेसके पुत्रको नीच बतावैं॥

राम—शबरीजी दक्खिन में आगि कैसी जल रही है।

शबरी—कुमार लछमनजी ने योजनबाहु की चिता बनाई है

राम—बहुत अच्छा किया।

लछमन—शबरीजी देखो देखो।

संयोग लहि जनु उचित इनकत बरत रुधिर अपार है,
छिन होत छोड़त माल चटकत हाड़ जनु टंकार है॥
तन गलत चर्बी फेन निसरत उथलि प्रबल कृसान सों।
यह लखिय अचरज देव आवत एक निकरि मसान सों॥

(एक पुरुष देवता के रूप में आता है)

पुरुष—जय जय श्रीरामचन्द्र की जय।

लखिमीसुत दनु नाम मैं भा राक्षस लहि स्राप।
वज्र लगो बिल सिर भयो छुटे आजु सब पाप॥

राम—हम बहुत प्रसन्न हैं।

दनु—मैं माल्यवान के कहने से आप को मारने के लिए वन में आया था। अब क्या आप की बात बार बार कहूँ। अब तो आप के प्रसाद से मेरा स्वाभाविक तेज मुझे फिर मिल गया है। और लोक को देख सकता हूँ। सो आपने मेरा बड़ा उपकार किया इससे आपको बताना उचित समझता हूँ।

माल्यवानके कहन से तुम्हरे मारनकाज।
बैठत इतहुँ अमित्रता, बाली आवत आज॥

राम—भलेमानसों की यही रीति है।

उदासीन कैसे रहैं मित्र काज महँ वीर।
होत मिलन की चाह में हमरहु चित्त अधीर॥

और सब—अरे रामचन्द्र जी के सिवा और कौन ऐसा कह सकता है।

राम—भैया अब जाओ अपने लोक में आनन्द करो।

दनु—जो आज्ञा। (बाहर जाता है)

लछमन—शबरी जी वालि और रावण की मित्रता कैसे हुई।

शबरी—कैलास शैल उठाय त्रिभुवन जीति गर्व जनाइकै।
दसकंठ मांग्यो युद्ध तेहि गहि बालि काँख दबाइकै॥
करि स्नान सिन्धुन माहिं संध्याकर्म तेहि कपि त्यागेऊ।
परि पाय तब व्यवहार मित्र समान रावन माँगेऊ॥

लछमण—अरे पापी पुलस्त्यकुलके कलंक इसी के बल से तू स्त्रियों को जलाता है।

राम—संसार में एक से एक बढ़कर हुआ करते हैं यह तो संसार की लीला है।

लछमण—शबरी यह सामने कौनसा उजला पहाड़ है।

शबरी—वीर बालिके सुजस को रासि, नहीं यह शैल।
हाड़ दुन्दुभी दैत्य के, परे रोकि सब गैल॥

लक्ष्मण—इससे तो राह रुकी है चलो और राह लें।

राम—चले तो आओ। (पैर से फेंक देता है।)

शबरी—बड़ा अचरज है।

दुन्दुभि दुन्दुभि हाड़ गुरु भईं चमकति जोरी
फेंक्यो गिरिसम जाहि ढोक कर बालि बहोरी ॥
तिनहिं समय के मेघ सरिस उड़त मग जैके।
चरनअँगूठ प्रहार और रघुवर तेहि फेंके ॥

लक्ष्मण—पहाड़ के पास कैसी लोनी और सुन्दर हरियाल भूमि फैल रही है।

शबरी—यह ऋष्यमूक और पम्पासर के पास की भूमि है। आगे मतङ्ग मुनि का आश्रम है। ऋषि नहीं हैं तो भी यहाँ होम हो रहा है, सोम का कटोरा रक्खा है, कुश बिछा हुआ है और घी की सुगन्ध आ रही है।

राम—बड़े तपस्वियों के तप का प्रभाव समझ में नहीं आता।

शबरी—महाराज देखिये! देखिये!

उगे बेत फिरननके तीरा।
फूल डारि बासत सरितीरा ॥
डारन बैठि पंछि बहु गावत।
निज जोबनमद प्रगट जनावत ॥

और भालू के बच्चे रहैं इन गिरिखोहन माहिं।
गूँजि उड़ावत बन सकल जब सब मिलि गुर्राहिं ॥
सिरत शाल के तरुन से इहैं हाथी मदमन्ध।
दूध बहत पल्लव टुटत फैलत कडुई गन्ध ॥

लक्ष्मण—यह क्या है कि ये भाई पुरवाई से हिलते हुए कद्म्बों को वन में आँखों में आँसू भर के देख रहे हैं और धीर होने पर भी धनुष पकड़ के संभल कर खड़े हो गये हैं।

शबरी—भैया तुम नहीं देखते।

फूले कमल लखिय चहुँ ओरा।
मारुत मदन मत्त बनमोरा॥
खिले तमाल फूल अति सुन्दर।
सजल श्याम घन शैलशिखर पर॥

लक्ष्मण—भाई इसे देख और ही कुछ सोच रहे हैं।

(परदे के पीछे) नाना जी, लौट जाओ।

हनिहौं तुम्हरे वचन से जन बिनदोष सुजान।
पूजनीय जो मित्र को सो निज गुरु समान॥

लक्ष्मण—शबरी जी यह कौन है?

शबरी—महाराज देखो।

सोने को कंठ गहे पहिरे सुरनाथ को दीन्हो सरोज की माला।
पिंग शरीर पै सोहैं लसैं बिजुरी घन ज्यौं रविदुतिकाला।
ऊपर राजत छत्र सिकोरि उठ्यो जनु मेरु को शैल बिशाला।
राह बनावत वेग सों स्वर्ग में आवत इन्द्र को पुत्र कराला॥

लक्ष्मण—हाहा बहुत अच्छी बात है कि इन्द्र का लड़का युद्ध दान देने वाला हम लोगों का मित्र आ गया।

राम—(आप ही आप) बड़ा वीर है।

(बाली आता है)

बाली—सातवें सिन्धु में डेलिके लोक अलोक पहारहि नीर उछारी।
बीतेहु कल्पको भंजि त्रिलोक पतालहि मूल समान उखारी।
फेंकि के सूरज चन्द औ तारन देहुँ हिलाइ कै भूमि पै डारी।
रूख समान उपारौं ब्रह्मण्ड तऊं यहि काज विषाद है भारी॥

देखो रामचन्द्र से हम से कोई वैर नहीं है; व्यर्थ किसी से लड़ाई के लिये घेरने से लोग बड़े अनुचित काम कर बैठते हैं। आज माल्यवान ने रावन के साथ मित्रता की सुध दिला के रामचन्द्र के मारने को मुझे उताह कर दिया। कितना हठ किया सबेरे से मुझे घेरे था अब [illegible] पहुंचा के लौटा हूं,

सुग्रीव लखि रिपु मीत ताहि छलि बन पहुँचायो ।
धर्मनिष्ठ जगपूज्य अतिथि सो है घर आयो ।
कीन्ह न तेहि सेवा उचित कहाँ कीन्हहु नहिं सुनी
ताहि, हाय ! मैं अधम वधन आयहु रिपु मानी ।

मैंने दूत से सुना है कि विभीषण ने सुग्रीव से भी बिना कहे श्रमणा को रामचन्द्र के पास भेजा है। रामचन्द्र ने भी उसे लङ्का का राज देने को कहा। अब इसी समय आश्रम के पास आ गये हैं तो कह चलूँ (चल कर) अरे कोई है।

जिन जीत्यो भृगुनन्दन रामा ।
सत्य धर्मप्रिय जो गुनधामा ॥
अतिसुन्दर तेहि लखन कहाहू ।
आवत इहाँ बालि कपिनाहू ॥
नैनन लहैं लाहु निज आजू ।
निबहै आजु गर्ब कर साजू ॥

राम—भैया लक्ष्मण ! कह दो कि हम यहाँ हैं।
लक्ष्मण—भाई यह खड़े हैं आप बोलिये।
बाली—तुम भी लक्ष्मण हो।
लक्ष्मण— जी हाँ। (दोनों पास जाते हैं)
बाली—(आप ही आप)

पुरुषसिंह चरितन अभिरामा ।
बीर धर्महित यह सोइ रामा ॥
जो नित अद्भुत चरित दिखावत ।
आगे के सब चरित छिपावत ॥

(प्रकाश) राम,

सुख मिलत होत अचर्ज तोहि लखि दुःख पुनि पावत हियो ।
इन दृगन तव छबि देखि सुन्दर रूप निज मन भरि लियो ॥
तब संग सुख हमको बदो नाहिं अब विलंब न कीजिये ।
जेहि हाथ जीत्यो परशुधर तेहि हाथ अब धनु लीजिये

राम—भले मिले यह अन्त दिन जोगहिं बचन तुम्हार।
शाखामृग तुम कहँ निरखि कैसे गहौं हथ्यार॥

बाली—(हँस के) अरे महाछत्री क्या तुम हम पर दया करते हो; हम ऐसे नहीं हैं।

हमरे चरित सकल जग जाना।
निज मुख सन का करौं बखाना॥
तुम नर सदा सत्य प्रिय जानहु।
यहि कर भेद न कछु मन आनहु॥
जो हठ, दंखिय परे पहारा।
यही बानरन के हथियारा॥

चलो खेत में चलें।

लछमण—दादा सच तो कह रहे हैं लड़ाई अपनी जाति के धर्म से होती है।

बाली और राम—(एक दूसरे से)
रहो यद्यपि मनचाहते जोग बीरसंबाद।
किनमहँ तुम बिन रोष है मोहि, चित यहै बिषाद॥

(बाहर जाते हैं)

लछमण—अरे धनुष उठाते ही बाली बिगड़ गया।

देखो तो, गर्जत मेघ समान भयंकर कोपकिये सोइ धावत है।
तीलनकौं ब्रह्मण्ड सबै घुंघुबोरहु को मुहँ बावत है।
झोंक में देह झुकी बिजुरीसम पूछ उठाय लफावत है।
गर्वसो पूंछ पसारि अकालमें इन्द्रको धुज हिलावत है॥

(परदे के पीछे) बिभीषण! बिभीषण!

नवघन गरज सरिस अति घोरा।
यह जरूर भाई कर सोरा॥
वा यह कहँ टंकार भयंकर।
माध्यो कै पिनाक फिरि शङ्कर॥

लक्ष्मण—शबरी जी यह कौन है ?

शबरी—यह विभीषण का मित्र सुग्रीव है जो भय और दाह से उसी ओर भागा जा रहा है जिधर से शोर सुना गया सब से बड़े वानर भी उसी ओर जा रहे हैं।

लक्ष्मण—तो हमें भी धनुष उठाना चाहिये।

शबरी—यह देखिये बाली के शरीर, दुन्दुभी के हड्डी और स्याल ताड़ के पहाड़ को फोड़ कर रामचन्द्र का तीर तरकस में घुसता है।

(पर्दे के पीछे)

कोपैं नहीं सुग्रीव विभीषण श्री में पै है सब राजकुमार,
धीरेहि ठाढ़े रहैं कपिवीर तु हौ अबहूँ लखि राम कुमार।
राम के हाथन पाइ कै मृत्यु कहौ तुलिये कपिवीर उदार।
यों सम मानिये सूर्य के पुत्रहि अङ्गद है युवराज कुमार॥

लक्ष्मण—देखो इन्द्र का लड़का इस दशा में भी अपने तेज से कैसा सोभा दे रहा है। सेवक सब आज्ञा पाते हैं लड़ाई के समय छोड़ के गाढ़े दुःख में मुह मारे देख रहे हैं, भाई भी आँखों मे आँसू भरे हुये स्नेह से उसको निहार रहे हैं राघव जिसके शोक मे पड़ा विभीषण भी बंधा हुआ है, बड़े चाव और आदर से राम की पीड़ा का बढ़ना रोकता हुआ गले लगाने के बहाने सुग्रीव के गले में सोने के कमलों की माला डाल रहा है

(सुग्रीव विभीषण बाली और राम आते हैं)

राम—जासु अलौकिक जन्म और अगाधित बड़ाई।
लसत पुण्य तन तेज शील के सब गुन ख्याति।
ऐसन हू को बीति भूमिहूँ मिलत सोई।
हूई देव तो सरिस मानुष जग अहैं नहि कोई॥

बाली—भैया विभीषण देखो तो भैया सुग्रीव के गले में सोने कमलों की माला कैसी अच्छी लगती है

सुग्रीव (अलग)

अकस्मात हनि बज्रनिपाता ।
करी हाय उलटी सब बाता ॥
अब पुनि शपथ दिवावत भाई ।
करौं काह कछु नाहिं बसाई ॥

बाली—भैया रामचन्द्र ।

राम—कहिये ।

ली— दुष्ट संग यद्यपि नहीं चाहत कोउ संधान ।
तऊँ करि तेहि मैं दैवबस भयो हरिन हैं प्रान
तुम सज्जन तब हेत अब उचित होय जो काः
चलत प्रान करिहौ तऊ यथा शक्ति तेहि भाउ

राम—(लाज से सिर नीचा कर लेता है)

सुग्रीव और विभीषण—अथवा जी रामचन्द्र
थे, उनके हाथ से हम लोगों को ऐसी विपत्ति

मन्दरी—माल्यवान ने सब किया (दोनों के कान

बाली—भैया सुग्रीव ।

सुग्रीव—(आँखों में आंसु भर लेता है)

बाली—अरे सुग्रीव भी नहीं बोलता ।

सुग्रीव—(करुणा से) कहिये कहिये ।

बाली—कहो तो हम तुम्हारे कौन होते हैं ?

सुग्रीव—गुरु और स्वामी ।

बाली—और तुम ?

सुग्रीव—चेले और चाकर ।

बाली—तो हमारा तुम्हारा धर्म क्या है ।

सुग्रीव—हम आप के बस रहैं ।

बाली—(सुग्रीव का हाथ पकड़ के) हम
ते हैं

राम और सुग्रीव--आप पूजनीय हैं आप की बात को कौन न मानैगा।

विभीषण— वाह वाह बड़ाने की जगह पर थोड़े में कैसी धर्म की बात कही है।

बाली—भैया सुग्रीव तुमने ब्रह्मा के पुत्र जांबवान से धर्म सीखा था उस ने मैत्री का धर्म कैसा कहा था।

सुग्रीव—नहिंय द्रोह छल, कीजिये मानहु है उपकार।
हिय में राखिय नित हितै, यही मित्रव्यवहार॥

बाली—भैया रामचन्द्र तुम ने भी तो सूर्यवंश के पुरोहित वशिष्ठ जी से यही सीखा है।

राम—जी हां।

बाली—तो अब तुम इसी मैत्रीधर्म का निबाह एक दूसरे के साथ करना। हमारे कहने से अग्नि को साखी करने की प्रतिज्ञा करो। मतंगयज्ञ की अग्नि पास ही है।

राम और सुग्रीव—(एक दूसरे का हाथ पकड़ के)
साखी अहै मतंग के मख की अग्नि पुनीत।
मेरो हिय तेरो भयो तेरो हिय मम मीत॥

बाली—भैया रामचन्द्र यह विभीषण जी हैं जिन्हें तुम ने श्रमणा के सामने लंका का राज देने को कहा है।

श्रमणा और लक्ष्मण—वाह वाह कैसा पता लगाते रहते हैं।

राम—जी हां।

विभीषण—आप की बड़ी कृपा है। (प्रणाम करता है)

सुग्रीव—हम तो देखते हैं। कि हम भी किया के श्रमणा का रामचन्द्र जी के पास जाना भी सुफल हो गया।

राम—प्यारे मित्र महाराज सुग्रीव विभीषण यह हमारे छोटे भाई लछमणे है।

दोनों आओ भैया (दोनों मिलते हैं)

शबरी—कैसे प्रेम का मेल है।

बाली—भैया बिभीषण तुम भी लाज संकोच छोड़ दो। तुम को राज मिलता ही है। मेरी दशा से जान लो कि रावण भी अब नहीं है। तुम और रावन दोनों लड़के हो, परन्तु जो जिसका नमक खाता है उस का भला करना धर्म समझता है। तुम्हारे नाना की यह युक्ति थी कि बिभीषण राम का मेल हो जाय। जितने बड़े हैं वह सब महाप्रतापियों का तोष जानते हैं। अब मेरे प्राण निकल रहे हैं। तुम मुझे किरने के किनारे ले चलो।

नील आदि—हाय आज हम लोग अनाथ हो गये

हा! दृढ़ मन्दर-सरिस सरीरा।
हा! जग माहिं अतुलबलबीरा॥
हा! दुन्दुभी दनुज के घालक।
हा! सुरेसपुत कपिकुलपालक॥

(रोते हुये बाली को सँभालते हैं)

बाली—सुनो जो वीर बानर,

सुग्रीव अंगद ईस राहि है तब कृपा सन आस है।
सब सहब इन की बात आप बडेन सों बिश्वास है॥
तब मेह जबहि है रामरावनयुद्ध दिन थोरे अहै।
तेहि हेतु जोरौं हाथ, तुम सब घोर हम कछु क्यों कहै॥
क्योंकि, यह दिग्गजन सन युद्ध तब सिरि काल पकरि झुकायकै।
वह झाढ़िबो पताल पूँछन लिंगुहरज उड़ायकै॥
जनि भूलियो रिपुमथन महँ वह शक्ति पुनि निज बाँहको।
कपितेज पौरुष धर्म पुनि वह रीति प्रीतिनिबाहको॥

(सब बाहर जाते हैं)

इति।

छठे अङ्क का विष्कम्भक

[स्थान — लंका में माल्यवान का घर]

(माल्यवान दुखी सा आता है)

माल्यवान—हाय ! रावण के राजा की बुरी चाल बेल की नाईं फैल रही है: इसकी टहनियाँ चारों ओर बढ़ती ही जाती हैं

सीय को मांगब बीज है जासु को अंकुर सूर्पनखा को पयान ।
इनको थाला कुठार को, पल्लव बीच मारीच को मायविधान ।
शाखा है जानकी को हरिबो विलसै तेहि में जब कागर नाल ।
दूषनको वध, भाई को राज दै बानर सनेह के साथ मिलाय ।

थोड़े ही दिनों में फल भी इसमें लगने चाहता है। हम तो बूढ़े हैं। हमें आगम भी देख पड़ता है। (सांस लेकर) हा. हम लोगों के भाग्य कैसे फूटे हैं,

यद्यपि मंत्र के बल कियो संकट को प्रतिकार ।
भये व्यर्थ एक एक ज्यों आलस को व्यापार ॥

(घबड़ाहट से) मंत्री का काम भी बड़े दुःख का है,

जो जो अंकुसहीन नृप करैं मोह बस काम ।
सोचिये तासु उपाय नित, छिद्र रहै जो वाम ॥

अरे इस पापी हनू के छोकरे की लीला तो देख के अचम्भा होती है। इतने बड़े शूर वीर बानरों के अगुओं को आगे से भेद लिया तो अब क्या नहीं कर सकता। (सोच के) किष्किंधा से लौटे दूत ने यह भी कहा है कि सीता को ढूंढने चारों ओर बड़े बड़े बानर भेजे गए हैं।

(परदे के पीछे)

धूमि लसैं लपटैं चहुँ ओर लसै जनु सानहुँ सों बढ़ी ज्वाला ।
जानि परै नहिं लोचन को कछु धाय धरैं दुखमूल विशाला ।
जाति के सालौं जलै कर काल भजैं भरले भट होय बेहाला ।
सिन्धु तरंग समान चहुँ दिसि लंकहि लोकत झांसि

(घबड़ाई हुई त्रिजटा आती है)

त्रिजटा—छोटे नाना जी, बचाओ बचाओ।

(छाती पीट कर गिर पड़ती है)

माल्य०—अरी क्यों घबड़ा रही है क्या विपत पड़ी।

त्रिजटा—(उठ के) नाना जी क्या कहूँ। हाय, मेरे भाग फूट गये। हाय, एक बानर नगर भर जलाके राक्षसों को तोरकी नाईं खींच खींच फैंकता रहा और जब कुमार अक्ष ने उसे घेर कर बांधना चाहा तो उसे मार कर निकल गया।

माल्य०—(दुख से) अरे क्या नगर जल गया और अक्षकुमार मार डाला गया। यह बन्दर कौन है। (सोच के) हाँ दूत ने उस का नाम हनूमान बताया था। हा,

> रुई सम लंका पुरी भसम कियो हनुमान।
> कै लंकापति को प्रबल तेज प्रताप बुझान॥

बेटी, वह सीता से मिला था ?

त्रिजटा—छोटे नाना जी, कुछ बेर पहिले एक नन्हा सा बन्दर उस से कुछ बात कर रहा था, उस ने भी अपने सिर से चूड़ामनि उतार के पहिचान के लिये दिया, मैं इतना जानती हूँ।

माल्य०—तो और क्या चाहिये। (डर के) इस नन्हें बन्दर ने तो इतना किया। ऐसे करोड़ों बन्दर सुग्रीव के राज में हैं।

त्रिजटा—(सोच के) अरे, ऐसी सुकुमार, ऐसी सुन्दर, ऐसी मीठी बोलनेवाली मानुस सीता हम राक्षसों को भी राक्षसी हो गई।

माल्य०—बेटी सब कुछ हो सक्ता है,

> रहत शान्त जारत तऊँ पतिव्रत तेज प्रताप।

(सोच के) और वह भी बेचारी क्या करै,

> अपने पापन को उदय भसम करत है आप॥

त्रिजटा—छोटे नाना जी, पहिले तो हम लोग सब राक्षस ईडकबन के पास पहाड़ों में रहते थे और सारे जम्बूदीप में

किया करते थे। अब यहां भी रहना कठिन है। क्या करें, कहां जायें।

माल्य०—बेटी इतना क्यों डरती है। देख तो,

पर्वत है सो अगम्य त्रिकूट को, ऊपर ताके बसी नगरी है।
खाईं है सिंधु, छुवें नभ जासु तरंग, औ घात दिवार घिरी है।
(सोच के) इस का भी कौन काम है
बीसं भुजा जिन सत्तरिपुन सँहारन को जनु सौंह करी है।
राक्षसनाथ की (बाईं आँख का फड़कना जानके, दुःख से)
हाय कहौं मुखहुं जनि ऐसी दशा बिगरी है॥

बेटी, भैया कुम्भकर्णकी नींद टूटने में कितने दिन और हैं।

त्रिजटा—छोटे नाना जी, अब की छः येती चौदस को चार महीने पूरे हो गये।

माल्य०—क्या अभी उस के जागने को दिन बहुत हैं। (सोच के) बड़े आनन्द की बात यह है कि छोटा लड़का आगम सोचता है। उस का बेसमझेका काम भी अच्छा फल देगा। कुछ भी हो उसी से कुल की प्रतिष्ठा रहेगी यही मैं भी समझता हूं।

त्रिजटा—(घबड़ा के) दई दई भगवान कुशल करै यह आपने क्या कह डाला।

माल्य०—क्या कहा?

त्रिजटा—आप तो अपनी नीति की बात कह रहे थे उस में मुख से महा अमंगल निकल गया।

माल्य०—हम ने समझ के कहा। बात तो यही होगी।

अनरथ सकल होयव्याता करवावत नित आप।
कहां शुद्धकुलजन्म, कहँ नारिहरनकर पाप॥
निज इच्छा दिननाथ ज्यों विचरत सदा अकास।
अस्ताचल जो ना चलै घटै न दिवसउजास॥

अब तो निरी बुद्धि से जो कुछ हो सकता है सो होगा। अ

इन का नाम क्या लें। बेटी, इस समय महाराज दशानन क्या कर रहे हैं?

त्रिजटा—छोटे नाना जी, महाराज सर्वतोभद्र अटारी पर बैठे, वहीं राक्षसवंश की काल जिस में रहती हैं उसी अशोकवाटिका को देख रहे हैं। मैं जब इधर आती थी तो यह सुना कि महारानी जी नगर की यह दशा सुन के उदास होकर महाराज को समझाने वहीं जा रही हैं।

माल्य०—हां है तो क्या इतना ही बहुत है कि मन्दोदरी महाराज को समझाने के लिये घबड़ा रही हैं। महाराज को न देखो जो समझाने पर भी नहीं समझते। आओ, फिर, भीतर चल कर सोचैं कि तुम कैसे भेजना चाहिये। (दोनों बाहर जाते हैं)

इति

छठा अङ्क

[स्थान—लंका राजमन्दिर में सर्वतोभद्र महल]

(रावण सोचता हुआ बैठा है)

रावण—कहा चन्द्र सीतामुख ऐसे।
कमल सौंह पँकज केहि लेखे॥
कहां कामधनु लखि भौंह चंचल।
कहां श्यामघन लखि सुचि कुन्तल॥
कहिय ताहि प्रिय के सम कैसे।
ताके अंग अनूपम ऐसे॥

(सोचकर प्रसन्न होकर) अजी धरती पर हल चलाने से यह स्त्रीरत्न नहीं निकला वरन् बहुत दिनों पर मेरा मनोरथ पूरा हुआ। (सोचकर) अहा! जब अनुकूल होता है तो ऐसा ही करता है (गर्व से) भजी ब्रह्मा ही क्या है

दलन जो न करौं छन मैं ब्रह्मंड को पीसि कै धूरि मिलाओं।
देह रचै जो प्रपंच लोक विधि के तिहुँ लोक के पार बहाओं।
नेक प्रताप जलधिन काज मैं आहु मग्नों नई राह चलाओं।
केवल जोग दया के लगे इन्है कहा व्यर्थहि कोप दिखाओं॥

(दासी समेत मन्दोदरी आती है)

दासी—इधर महारानी जी, इधर चांदी के सीढ़ियों का दुआर यह है।

मन्दो०—(चढ़कर) क्या महाराज यहीं बैठे हैं। (देख के) क्या अशोकवाटिका की ओर देख रहे हैं। (दुःख जता कर) वैरी सिर पर चढ़ आया अब भी राज काज की सुध महाराज को नहीं है। (आगे बढ़कर)—महाराज की जय हो।

रावण—(आकार छिपाकर) क्या महारानी आयीं ?

(पास बैठाता है)

मन्दो०—(बैठकर) महाराज, आप ने क्या विचारा है ?

रावण—कौन सी बात ?

मन्दो०—महाराज, वैरी चढ़ आया है।

रावण—(अचरज जनाकर) कैसा वैरी और कैसी चढ़ाई महारानी ने सुनी है ?

शीश दुहुन दिसान के हाथिन के धरि हाथन सों टहराई।
आंध्यों दिशापति देवन को बहु बारन बांधि भुजान बढ़ाई।
घाव सहे उर मैं न हटो सुर मारो जो वज्र ले ब्रज चलाई।
ताहू के जोड़ को वीर भयो यह भूल की बात कहांसे धौं आई॥

तौ भी सुन तो लें। कहो तो कौन है।

मन्दो०—सारे वानरों की सेना समेत सुग्रीव को आगे किये दशरथ का लड़का राम और उस का छोटा भाई।

रावण०—अरे तपस्वी और उसका भाई। वह क्या कर सकता है?

मन्दो० महाराज सब मिलकर तो कर सकते हैं। और यह

भी सुना है कि समुद्र के तट पर सेना ठहरा के राम ने पुकारा और समुद्र अपने घर से न निकला तब,

जानै कहा हथियार अपूरब सों तपसी जलभीतर मारा।
ताके प्रभाव उठ्यो अथि अम्बुधि होइ कृशानु अयो जल सारा।
व्याकुल ह्वै कछुप उछरे घबराय चले भगरी घरियारा।
बेसुध होइ गिरे जलमानुष फूटे हैं सूनी औ संख अपारा॥

रावण—(मुँह बनाकर) तब फिर ?

मन्दो०—महाराज तब तो समुद्रदेवता बाण से शरीर छिंधे हुये जिसकी गांसी भर देख पड़ती थी आप ही निकले और पैरों पर पड़ हाथ जोड़ राह बात दी। और सुना उस साहसी राम ने और भी कुछ किया है।

रावण—हां हां सुनैं कहो तो महारानी।

मन्दो०—हज़ारों बन्दरों से पहाड़ मँगवा के सेतु बांधा।

रावण—महारानी तुम्हें किसी ने बनाया है। समुद्र को गहिराई किसी के मान की नहीं है।

जेते जम्बूद्वीप में औरो कहूँ पहार।
तिन सब एकहु कोन में भरै न सिन्धु अपार॥

और जो तुम ने सहासी कहा तो मेरा साहस भूल गईं।

निज हाथन निज सीस उतारी।
धोये चरन रुधिर नव धारी॥
सुखद्दगजलयुत मुख मुसकाना।
तेहि अवसर चंडीपति जाना॥

मन्दो०—महाराज और भी सुनिये एक बानर के हाथ का ऐसा प्रभाव है कि उस के छूने से जल में पत्थर उतराये ही रहते हैं।

रावण—(सिर हिलाके) पत्थर भी उतराते हैं। स्त्रियों के इस भोलेपन की तो कोई दवाई नहीं है, महारानी क्या कहैं,

चतुरानन जानै भलो मों श्रुतिज्ञान अपार।
मघा सुरपति, जस जगत, धीरज वज्र हथ्यार॥

वज जाले कैलास गिरि साहस त्रिभुवननाथ।
चरन चढ़ायों तासु जब काटि सीस निज हाथ॥

(परदे के पीछे बड़ा हल्ला होता है)

मन्दो०—महाराज बचाओ बचाओ (डर से देखती है)

रावण—डरै मत।

(परदे के पीछे)—अरे हे लंका के फाटक पर के रक्षक
बन्द करौ सब फाटक बेगि लगाय के अर्गलहू अति भारी।
भीत पै अस्त्र और शस्त्र चढ़ाय करो सब रोहन की रखवारी।
भोजन वस्तु जुटाय धरो जिसमैं घर सों नहिँ बालक नारी।
आय गये तपसी दोउ सैन लिये संग वानर भालु की सारी॥

(परदे के पीछे से मुँह निकाल के प्रतीहारी आती है)

प्रतीहारी—महाराज प्रहस्त सेनापति कुछ बिनती किय चाहते हैं सो बाहर खड़े हैं।

रावण—कौन ? प्रहस्त सेनापति, आने दो।

प्रतीहारी—बहुत अच्छा। (बाहर जाती है

(प्रहस्त आता है)

प्रहस्त—मनुष्य के छोकरे का चरित कैसा उजागर है, देखो तो
गोपद सरिस सरितनाथ लांघ्यो लसत लहर अनंकपा।
पुनि निडर निज घर माँहि ज्यों पुर लंक दिसि निज पग धारा
अति विषम शैल सुबेल पर निज कटक सकल थमायक।
सँग कछुक वानर वीर अब पुर लौंह अंगन आयक॥

(आगे देख के) अरे! महाराज लंकेश्वर यह बैठे हैं।

रावण—सेनापति यह हल्ला कैसा हुआ ?

प्रहस्त—(आपही आप) क्या महाराज अब तक कुछ नहीं जानते! अच्छा तो काम ही की बात कहौं (प्रकाश)

पुरी घिरी चहुँ ओर से कीन्हे बन्द किवार।
रक्षा चारहुँ दिसि करत राक्षस भट अपार॥

रावण-क्या ?

प्रहस्त—(आप ही आप) अब भी वही दशा है (प्रक महाराज,

अनुज सहित एक मर्त्य नर घेरी पुरी तुम्हारि।
मिलै न भोजन हूँ सकल व्याकुल है नर नारि॥

(प्रतीहारी आती है)

प्रतीहारी—महाराज एक बन्दर कहता है कि हम राम के और बाहर खड़ा है।

रावण—(मुँह बिगाड़ के) बन्दर, अच्छा आवै बन्दर।

प्रतीहारी—जो आज्ञा (बाहर जाके और अँगद के साथ आ हाराज वह बैठे हैं जाओ।

अँगद—जय जय महाराजाधिराज लंकेश्वर की।

रावण—तुम सुग्रीव के सेवक हो।

अँगद—जी नहीं।

रावण—फिर किसके हो।

अँगद—लंकेश्वर सुनो हम जो हैं और जिस लिये आये हैं।

पापी राक्षसवन के हित दवागि रघुराई।
आयौं सिखवन तोहि तासु अनुशासन पाई॥
दै सीता परिवार पुत्र तिय सहित दशानन।
परु लछिमन के पाँय नतर मरिहै प्रभुवानन॥

रावण—बन्दर बड़बड़ाय तो ठीक ही है।

अँगद—अजी हम जो कुछ हों तुम दो टूक बात समझ लो

गिरैं लखन के पाँय, कै ताके सन्मुखन पर।
कहु जो तोहि सुहाय, बदे आज तव सीस यह॥

रावण—(क्रोध से) अरे है कोई इस बकवादी बन्द रूप बिगाड़ दो।

प्रहस्त—महाराज यह दूत है, इस पर क्रोध नहीं उचित है।

रावण—इस का रूप बिगाड़नाही नकलियों का उत्तर है।

अङ्गद—(योधों डुलाकर कूद के)

धक धक तेरे सीस लिखिकर वेगि पकरि मरोरि कै।
तरवारि से निज नखन काटि किरीट बन्धन तोरि कै॥
ओहि जात फिरि निज कटक बिन लाज हिये दसहु दिसानको।
जो हेत परब्रह्म नाहिं मैं हूं दूत कृपानिधान को॥

(बाहर जाता है)

प्रहस्त—महाराज आज्ञा पानेके लिये जी बहुत घबड़ा रहा है।

रावण—अजी क्या पूछते हो?

सबै द्वार लंकापुरी के उघारो।
करे अर्गलैं बेगही तोरि डारो॥
चलै राक्षसों की सोई सेन बाँकी।
मची लोक में शक्ति के धूम जाकी॥
चहुँ ओर संग्राम भारी मचाओ।
करै शत्रु सेना भगाओ भगाओ॥
घुमाओ भुजा हाथ लै अस्त्र भारी।
नसै शत्रु के पक्ष की भीर सारी॥
वृथा गर्व के बानरैं दौरि डारौ।
चढ़े कोस भालू करै बेगि काटौ॥

प्रहस्त—जो महाराज की आज्ञा। (बाहर जाता है)

(परदे के पीछे बड़ा हल्ला होता है)

(सब घबड़ा कर सुनते हैं)

(फिर परदे के पीछे)

घोर भयङ्कर रूप धरे कपि राक्षस मारि गिरावत हैं।
काटि कै मूं डन चारिहुं ओर सो वेदी सी मानो बनावत हैं॥
छोड़त सीस और हाथ गिरैं तन ज्योंही सो बाहर आवत हैं।
ीरन को पुरद्वार मानर दौल बजावत हैं॥

रावण—(ऊपर देख के क्रोध से) अरे यह देवता अपने को भूल से गये और राम का पक्ष लिये कूद रहे हैं। अच्छा महारानी तुम भीतर जाओ। अब हम भी

धरि कछुक भुज मदमत्त बानर बीर दिलन बहावहूँ।
रन खेल के नट सरिस तपसिन धोसि धूरि मिलावहूँ॥
रन देखि हैं सब अन्ध वैठे आज कछुक विचार मैं।
जो बचे तिन सन सोइ सुरन गहि भरौं कारागार मैं॥

(विकट घूम के मन्दोदरी समेत बाहर जाता है)

[दूसरा स्थान—समर भूमि के ऊपर आकाश]

(रथ पर बैठे मातलि समेत इन्द्र आते हैं)

मातलि—देव स्वर्गराज अब तो लंका पहुँच गये।
प्रलै काल जब सात पयोनिधि।
करत प्रचण्ड भँवर मिलि जेहि बिधि॥
यहि अवसर निसिचर की पांती।
आवत उमड़ि उमड़ि तेहि भांती॥

हम समझते हैं कि निशाचरों का राजा लड़ने को बाहर निकला है।

इन्द्र—मातलि, देखो देखो.

सुत सोदर सेनन के साथा।
कपिन भिरत लखि निशचरनाथा॥
झपटि खोलि पुर दुर्ग किवारे।
खेदे पुर बाहर कपि सारे॥

(कुछ सुनने का सा भाव बताकर) अरे, यह कौन है जो उत्तर दिसा से सोने की घंटियां विमान में बांधे हुए आरहा है।

मातलि—चित्ररथ तो हैं जिन्हें आप ने गन्धर्वों का राजा बनाया है।

(विमान पर बैठा हुआ चित्ररथ आता है)

चित्र०—देवराज की जय।

इन्द्र—गन्धर्वराज कहो लड़ाई देखने को जी चाहा?

चित्र०—और भी एक कारन है।

इन्द्र—और क्या है?

चित्र०—धनेश की आज्ञा।

इन्द्र—कैसी आज्ञा?

चित्र०— यहि की जनमधरी सन दाढ़ा।
मेरे हिये नाव कछु गाढ़ा॥
लखि करनी सब के हित सोका।
रह्यो द्यापि अब सोइ त्रैलोका॥
तासु मरनदिन आजु दैव बस।
देखैं अब परिनाम होत कस॥

यही जानने को हमें भेज दिया।

इन्द्र—अजी यह दोनों एक ही वंश के हैं उन्हें भी ऐसी डाह है?

चित्र०—इस में क्या अचरज है यह दोनों तो एक दूसरे के जनम से बैरी हैं। धनेश पर रावन का छल तो प्रसिद्ध ही है जो छल से निधि और पुष्पक आदि के हरने में किया और यह भी क्या है।

जेते जीव जन्तु जग जाये।
सब यहि के दुश्चरित सताये॥
आजु मनावत सकल सप्रीती।
श्रीरघुवंशतिलक की जीती॥

इन्द्र—(देख के) गंधर्वराज हमें जान पड़ता है कि राघव ने थियार चला दिये क्योंकि देखो बन्दरों की सेना कैसी तितर बितर भाग रही है हला ऐसा मचा है मानो समुद्र की बड़ी भारी लहर तट की पहाड़ी पर टकरा रही है।

चित्र०—देवराज देखो देखो।

बैठो गिरि के शृंग सरिस रथ निशिचरनाहा।
युद्ध करन के हेत चलत मन सहित उछाहा॥
कहत काल जब करत प्रबल निज धनुटंकारा।
दिग्गजन के गिरिन गूँजि बाजत नभ सारा॥

इन्द्र—गन्धर्वराज, इन दोनों वीरों का समर की सामग्री बराबर नहीं है। (घबड़ा के) मातलि मातलि हमारा सांग्रामिक रथ रामचन्द्र जी के पास ले जाओ, हम गन्धर्वराज के रथ पर बैठ जायँगे। (वैसाही करते हैं)।

मातलि—जो स्वामी की आज्ञा। (रथ लेकर बाहर जाता है)

चित्र०—देवराज बड़ा गड़बड़ मच गया।

दोऊ ओर सों ज्यों चली अस्त्रधारा।
लगे शस्त्र के होन त्योंही प्रहारा॥
सबै बुद्धि औ युद्धमर्याद छूटी।
गिरे दौरि एकैक सों पांति टूटी॥
गहे धाय के एक के केस एका।
हनी छुरिका एक योधा अनेका॥
कहूँ राकसैं कीस योधा पछारैं।
कहूँ दाबि के हाथ सों मींजि डारैं॥
चलीं देह सों रक्त की यों प्रवाहैं।
सबै युद्ध भू की भई बन्द राहैं॥

और भी, लागत वज्र समान हथ्यार शरीर सुवीरन के बिलगाहीं।
हाथ उड़ैं धरकैं सिर नाचत रुण्ड सबै यहि मैं परिजाहीं॥
युद्ध के आंगन बीच कहौं यह शैल को देखि परै ओहि मांहीं।
शत्रु की मार सों होय बिहाल अनेकन कोटसे सूर बिलाहीं॥

इन्द्र—गन्धर्वराज इधर इधर देखो,

तन लगत बान प्रचंड लै उड़त आमिषखंड॥

तेहि भवन पल फैलाय। बहु गिद्ध आवत धाय॥
सँग्राम भैरव मांह। फिर पंख तिनकी छांह॥
सब अंग रकत नहाय। द्विय अक्ष लखन सुहाय॥
किये सिथिल सकल शरीर। सुधि हैत मांस सुबीर

सो, उर बहाइ धरि धौर वीर बहु निधरक ठाढ़े।
अस्त्र शस्त्र की चोट रहीं लोहित रंग गाढ़े॥
मांस भिलो जनु नाहिं कटत नख ध्वाल सिहारे
हूमन उर के हाड़ बरें लखि आंनि सारे॥

चित्र०—देवराज रावण का सँग्राम में उतरना कैसा विचित्र
सेवक सब सँभारि भूमि डोरत बैठावे।
मेघनाद निज पास अनुजसंग सँग लगावे॥
रन के काज उपाय माहिं सोचत अति धीरा।
कुम्भकर्ण कहु बीर बीच देखिय इक औरा॥
कैकसी बन्धु को वर्ग यह विकट भेष पीछे खड़ो,
इन सबन बीच जनु विन्ध्यगिरि निशिचरपति रथ पर चढ़ो
इन्द्र—गन्धर्वराज इस भांति बैरी को बढ़ते हुये देखने पर

रामचन्द्र जी निडर खड़े हैं। क्यों न हो, होना ही चाहिये
बलै यदपि बहु बीर जोर करि झंझसमीरा।
छिबौं नहीं कुलशैल ठौर अपने सन धीरा॥
तजैं नहीं मर्याद यद्यपि बहु नीर उछारा।
परमब्रह्म को रूप वारिनिधि अगम अपारा॥

चित्र०—देवराज देखो।
धनु डारि लाये तीर अनुजहि बिनय करत निहारिकै।
तजि मेघनादविनास हित कर विशिख फेरि सुधारिकै
रन चतुर अनुज समेत राक्षसपतिहि बेध बनायऊ।
रघुबंशभूषन वीर फिरि करि कोप चाप चढ़ायऊ॥
तो बड़ा कठिन जान पड़ता है। क्योंकि

रन झपटि निशचरबीर अगनित युद्ध आतुर धावहीं ।
एक बार प्रबल हथ्यार रविकुलचन्द्र पर बरसावहीं ॥

अजी कुछ भी कठिन नहीं है ।

ए दोउ अमितप्रभाव महिमाअगम रघुकुलबीर हैं ।
रिपु अस्त्र डारत काटि एकहि बार मारत तीर हैं ॥

(चारों ओर देख कर) क्या यह बन्दर भी बड़ी भारी लड़ाई में अपने नाम के अनुसार काम दिखाकर रामचन्द्र ही के पास खड़े हैं। देखिये तो,

रथ आगे सुग्रीव, पीछे है अंगद खड़ो ।
दोऊ ओर बलसींव, जाम्बवान रावणअनुज ॥

(सोच के) हनुमान जी छोटे कुमार के साथ हैं (सोच के) अजी चाहै इहाँ रहैं चाहे उहाँ दोनों ओर से राम ही के पास हैं देखो इन लोगों का,

स्वामिभक्ति औ धीरता दिखरावत निज गात ।
औरन की औरै दसा रन मैं जानी जात ॥

इन्द्र—गंधर्वराज, संसार में स्नेह भी सारी इन्द्रियों को बस करने का मन्त्र है क्योंकि

गुनवान तेज निधान लछिमन चतुर रनव्यवहार मैं ।
है मेघनादहु सूरबीर प्रसिद्ध जस संसार मैं ॥
इन दुहुन की सुधि राम रावन यदपि तुल्य बिचारहीं ।
रिपु और सर की दृष्टि, दृष्टि दुहुन पर दोउ डारहीं ॥

चित्र०—ठीक है बड़े लोग स्नेह नहीं छोड़ते (अचरज और चाव से) देखिये सुरराज,

लगैं बज्र से चंड सौमित्र तीरा । करैं बेगही घाव भारी गँभीरा ॥
परैं लंक की सेन के बीर कैसे । गिरैं भूमि पै धावते सैल जैसे ॥
परे खेत मैं पुत्र थोरे निहारी । तजी राम सों युद्ध धावा सुरारी ॥
लखै पुत्र जैठो जहाँ बीर बंका । गयो बेगि मारी घरै चित्तसंका ॥

अब तो हम समझते हैं कि बुरा हुआ।

इन्द्र—अजी गन्धर्वराज क्या बिगड़ा है। ये दोनों रघुवंश के राजकुमार बड़े वीर हैं इनका कुछ नहीं बिगड़ेगा।

एकहि बार साधि बहु तीरा।
मारे सहस निशाचर बीरा॥
नैनहि सरस दृगानन गाजत।
बीरन महँ भूपन सम राजत॥

चित्र०—देवराज बहुत से एक ही पर चढ़ दौड़े उस पर हुई तो समझ लेना चाहिये की जय संख्या के अधीन नहीं अचरज से) यह देखिये देवराज जी।

तजि खेत अब खरराय। घर गयो निशिचरराय॥
रन कुम्भकर्ण अधीर। आयो जहाँ रघुबीर॥
तन लागत अगनित बान। भा कौन जगे समान॥
यह दसा पितु की देखि। खरराय कुम्भ बिसेखि॥
आयो पहार समान। कै गर्व मुरतिमान॥

अचरज से) वाह वाह बन्दरों की जाति भी कैसी होती है राह पाई घुस पड़े।

झपटत रघुबर ओर दूर सन कुम्भ बिलोकी।
बीचहि में चट आय राह बानर इक रोकी॥

ध्यान से देख के) क्या सुग्रीव है? (सोच के)

खंभ सरिस दोउ करन दाबि तेहि धरनि पछारा।
क्रोध अन्ध चढ़ि बेगि पीठि पीठी करि डारा॥

डर जना के) कुम्भकर्ण सुतदसा निहारी।
झपटि गहेसि तेहि बल करि भारी॥
झटकि छुड़ाय हरी कपिराजा।
ताछु नाक भगिनीमनलाजा॥

इन्द्र गन , इधर देखो इधर,

छिन्न छत्र इहाँ लछन कुमारा ।
रावन मेघनाद छिति मारा ॥
सोहि आवत लखि अनि घबराये ।
क्रोध अन्ध होइ तेहि पर आये ॥

हाय हाय रघुवंशी लड़के को बड़ा संकट सा जान पड़ता है। क्योंकि

लंकेशसुत अति विषम मंत्रन नागफाँस चलायऊ ।
गति रोकि गारुड़बान हनि ज्यों लखन ताहि गिरायऊ ॥
त्यों कोपि शक्ति सतनि मिथिलनाथ उर महँ मारेऊ ।
महि गिरत बेसुध लखन पौनकुमार कपटि सँभारेऊ ॥

विद्य०—देवराज जी बड़ो अद्भुत भाव हो रही है, एक ओर तो विभीषण से छोटे भाई की मूर्छा का हाल सुनकर श्रीरामचन्द्र जी का चित्त करुणा से कैसा हो गया है और तेज दब सा गया है और एक ओर से ऐसे दुख में पड़े हुये को भी कुम्भकर्ण सेना समेत चारों ओर से घेरे है। सो रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को देखने के लिये कैसा उपाय किया है देखो,

त्रिपुर विजय के काल धरी जो शम्भु सरीरा ।
तैसहि यहि छन धारि सोई रघुपति रनधीरा ॥
रावन अनुजहि खंड खंड कीन्हे निज बानन ।
जारि तासु दल अनुज पास आये आतुर मन ॥

(देख के) अहा ! हा ! रघुनाथ जी का भाईपर स्नेह कैसा है भाई की सी दशा अपनी हो रही है (चारों ओर देख कर—हर्ष से) वाह ! कैसी अच्छी बात हुई है जब यह दोनों दुखसागर में पड़े हैं तभी रावन परिवार समेत कुम्भकर्ण के मारे जाने से व्याकुल होरहा है (फिर देख के) अरे क्या अभी तक मूर्छा नहीं गई. इनका बेसुध होना तो बड़े ही कुअवसर का हुआ। क्योंकि

मायावी राक्षस करें विकल परे सब बीर ।
बानर रहे सहाय सोउ व्याकुल धरैं न धीर ॥

नहीं जानते वैद्य क्या करैगा ।

इन्द्र—गन्धर्वराज क्यों घबड़ा रहे हो, देखो अभी जागते हैं हनुमानजी की महिमा किसी के ध्यान में नहीं आ सकी ।

कल्प के छोटे जो भूरि को वृक्ष नई मेहि के रंग रोम फुलाई
टेढ़ो किये कछु पूँछ हिलाय अकास के तारन तोरि गिराई
विपत्त की आतुरता अनुरूप सो वेग जनाय कहूँ कछु जाई
हाथ में शैल विशाल लये छन एकहि में पहुँचो यह आई

चित्र०—(देखके हर्ष से) देवराज देखिये, देखिये

ज्यों कुमुदवन ससितेज पावत, लहत चुम्बक लोह ज्यों
भवसिन्धु में नर ज्ञान पावत ज्ञान छूटत मोह ज्यों ॥
त्यों लगत सैलबयार तन महँ उठत जागि योधा दोऊ ।
संसार वस्तुअपूर्वगुन केहि भाँति जानि सकै कोऊ ॥

(दक्खिन को ओर देख कर) अरे क्या यह रावन है? यह तो प्रलय के समय हिलते हुये समुद्र के जल की नाईं राक्षसेन को बढ़ाता फिर वैरी पर चढ़ा आरहा है । (सोच के) इस समय तो धर्मयुद्ध होने लगा । बड़े बड़े निशाचर जितने थे सब मिट गये । रावन और मेघनाद दोई बच गये । ये दोई हैं तो क्या हजारों कोटि राक्षसों के बराबर हैं । (फिर लक्ष्मण को देख के) यह तो

तजि म्यान ज्यों तरवारि । ज्यों नाग केंचुल डारि ॥
घन जलद सन ज्यों भानु । ज्यों रतन उज्वल सानु ॥
फिर सोह लखन कुमार । तन धरे तेज अपार ॥
यह दिव्य औषधि पाय । परताप फेरि जनाय ॥

(देख के) क्या जो बन्दर और राक्षस आगे बढ़े हुये थे उन से फिर लड़ाई होने लगी ।

संग्राम माहि इक ओर राक्षस बान तीछन मारहीं ।
इक ओर बानर झपटि नख सन शत्रु देह बिदारहीं ॥

इक एक सन वढ़ि चलत झपटत धूरि छोहि उड़ावहीं।
सोइ नहान सरीर लगत अबीर सरिस देखावहीं॥

(फिर ध्यान से देख के) इन दोनों सेनाओं की दसा सबेरे के अँधेरे उजाले को सी हो रही है।

ज्यों ज्यों राक्षससेन यह छीन परत नित जात।
त्यों त्यों बानरभालुबल सहस गुनो अधिकात॥

इन्द्र—गन्धर्वराज इधर तो फिर बड़ी मार होने लगी।

राम से आय भिरो दसकन्धर लक्ष्मण से पुनि तासु कुमारा।
धर्म के युद्ध में हर्ष जनाय दिखावत शस्त्र को ज्ञान अपारा।
काटत एक चलावत दूसर दिव्य हथ्यार अनेक प्रकारा।
बोतत कल्पकी आगि समान किये तिन सेन दुहूँ दिशि छारा॥

चित्र०—देवराज ये दोनों बड़े बीर हैं, इन की लड़ाई बड़ी कठिन है।

सिंह को नाद से गर्जत सों दिसि अन्त लों गूँज उठावत हैं।
बैरिसरीरन सों रनभूँ, नभ बानन बीर छिपावत हैं।
देखनहारन के तन रोम खरे करि बेग कँपावत हैं।
भूमि परे जो दसा तिनकी लखि आँसू भरे दृग आवत हैं॥

(चारों ओर देख के कौतुक और हर्ष से)

लिये केतु से हाथ में अस्त्र नाना।
चलैं गर्व सो फूलि जे यातुधाना।
करैं युद्ध ज्यों राम के सौंह आवैं।
घुमावैं भुजा अस्त्र भारो चलावैं॥

(सोच के) देखिये संसार में पंचभूत की सृष्टि ऐसी है,

नहि समात त्रयलोक में रहे जु राक्षस सूर।
होय जीवबिन देव बस मिले आज सो धूर॥

इन्द्र—गन्धर्वराज देखो इन दोनों राम और लक्ष्मण का चोखा
खाना भी दिखाता है

काटे जब कौतुकी त्रिलोचन बीर दोउ।
सीस दसकंठ और राक्षसकुमार के।
जानत अनेक एक एक के ठिकाने रहि।
दूजे के प्रभाव नाहिं गोचर बिचार के।
देखन हैं सौंह जापैं लीला सो विचित्र।
तहूँ ऐसे दोउ क्षत्रि तेज साहस अपार के।
छूट्यो न धीरज धरत न उछाह भूप।
काटतेई जात सीस बान बज्रसार के॥

(परदे के पीछे) भैया रामचन्द्र क्या इस पापी को खेला रहे हो जो एक तनिक सी बात में निपट जाय उसके लिये इतना बखेड़ा क्यों करते हो। समझ तो लो,

आप सीय, तिहुँलोक लोचन सुखसमुदाई।
यह निज अमर सरूप लंक यहि कर मघुनाई॥
परम जोति जिन ज्ञाननैन मन प्रगट निहारो।
पावैं सो मुनि शान्ति एक ही बान तुम्हारो॥

चित्र०—(सुन के) देव ऋषि भी इन दोनों को मारने के लिये राम लक्ष्मण से कहते हैं कि देर न करो। दुष्ट का मारना किसको अच्छा नहीं लगता। (घबराहट से देख के हर्ष से) देवराज देखिये

धारि ब्रह्मशिरअस्त्र बान दोउ बीर चलाये।
छन महँ रावनमेघनादसिर काटि गिराये॥
राक्षसवध निसो पाछे पुनि राक्षसनारी।
दोउ राघवसिर फूलवृष्टि मुनि देवन डारी॥

इन्द्र—(नेपथ्य की ओर देख कर) गन्धर्वराज यह देखो तीनों लोक के वैरी रावन का मारा जाना सुनकर महर्षि लोग फूले नहीं समाते, किसी बड़े उत्सव मानने के लिये मुझे बुला रहे हैं। तो मैं अब चलकर इन का मनोरथ पूरा करूँ और तुम भी यह वृत्तान्त सुनाके हमारे मित्र अलकेश्वर को सुख दो।

(दोनों बाहर जाते हैं)

सातवें अङ्क का विष्कम्भक

(रोती हुई लंका आती है)

लंका—(चिल्लाके) हाय महाराज दशकंधर ! तीन लोक को जीतने के मतवाले नागर ! कहाँ चले गये, हाय तुम्हारी भुजा से सारे राक्षस पलते थे, हाय तुम्हारे कमल से मुँह तो महादेव के दोनों चरणों चढ़े थे जब तुमने अपने हाथों अपने सिर उतार उतार कर चढ़ाया था; हाय कैकसी के लड़कों के शिरोमणि ! हाय भाई बन्धों के चाहनेवाले ! हाय अब मैं तुम्हें कैसे देखूँ ! कहाँ पाऊँ ! हाय कुमार कुम्भकर्ण ! हाय भैया मेघनाद कहाँ हो बोलते क्यों नहीं ! (चारों ओर देख के) हाय कोई भी नहीं बोलता ! (ऊपर देख के) हाय पापी दैव तुझे यही करना था ! और तेराही दोष क्या है अपने पापों का फल है। (रोती है)

(अलका आती है)

अलका—अरे राक्षसों के राजा की कैसी दशा हो गई। इतने राक्षस थे उन में विभीषण ही बचा (सुनने का सा भाव बताकर घूम के) अरे क्या मेरी छोटी बहिन लंका अपने स्वामी के नये विरह में चिल्ला रही है। (आगे चल के) बहिन धीरज धरो।

लंका—(देखके) अरे क्या अलका बहिन हो।

अलका—बहिन धीरज धरो संसार में सब की ऐसी ही गति होती है।

लंका—बहिन धीरज कैसे धरूँ अब तो कुल में स्त्रियाँ ही रह गई हैं सुनते हैं कि कुल में नाम को एक विभीषण बचा है सो भी मेरे अभाग से वैरी से मिला है।

अलका—अरी बहिन ऐसा न कहो वह हम लोगों का वैरी नहीं है

लंका—कैसे ?

अलका—फिर का वैरी था सो गया। अब तो हम लोगों का जन्म का हित इक्ष्वाकु का लड़का राम है जो राम लोक का प्रिय है।

लंका (साँस लेकर) सच सुच!

अलका—हाँ हाँ।

लंका—तो भला उसने हमारे स्वामी का क्यों नाश कर डाला?

अलका—उन्हीं बात बिगड़ गई।

पितु के बचन अनुज के साथा।
आये दंडकबन रघुनाथा।
यह तेहि छलि जो अनुचित कामा।
रावण कीन्ह तासु परिणामा॥

लंका—तो अब तुम कहाँ जाती हो।

अलका—कुबेर ने जो रावण के सौतेले भाई हैं जब गन्धर्व-राज से यह हाल सुना तब हम को आज्ञा दी कि जाओ जो हमारे भाईबन्ध बचे हैं उन को समझा बुझा आओ। विभीषण का राजतिलक देख आओ और पुष्पक विमान जो रावण ने हर लिया था उस से कह आओ कि रामचन्द्र जी की सेवा में रहे।

लंका—अरे क्या भूतनाथ के मित्र कुबेर भी रामचन्द्र की सेवा में रहते हैं ?

अलका—इस में अचरज क्या है।

ब्रह्मज्ञानि यहि जिन प्रति ध्यावत।
श्रुति यह पुरुष पुराण कहावत॥
'खलगंजन भंजन महिभारा।
जग मंगल लीन्ह अवतारा॥'

लंका—जो ऐसे ही हैं तो हमारे स्वामी राक्षसों के राजा ने क्यों न जाना।

अलका—तुम भी बड़ी सीधी हो शाप के बस उसकी मति भंग हो गई थी सो उसका भी दोष न था।

(पर्दे के पीछे हुल्लड़ होता है)
(दोनों घबड़ा कर सुनती हैं)

(फिर पर्दे के पीछे) सुनो जो तीनों लोक के जीव जन्तु।
रुद्र अर्क वसु के सहित यहि अवसर सुरराय।
सोय सती को देत है धन्यवाद हरषाय।
तासु अग्नि महँ शुद्धि लखि जब रघुवीर उदार।
संशयरहित काज तेहि फिर कीजै स्वीकार॥

अलका—क्या देवता रावन के घर में सीता जी के रहने से जो अपवाद का डर है उस को मिटाने के लिये सीता जी को आग से निकलने पर बड़ाई कर रहे हैं?

दो०, सोधन लौकिक तेज यह पतिव्रता की जोति।
यह अचरज पर जानियत लोकरीति यह होति॥

लंका—(सुनने का भाव बताकर) अरे बधाई के बाजे क्यों बज रहे हैं और गाना क्यों हो रहा है।

अलका—(नेपथ्य की ओर देख कर) अरे यह तो सीता जी की शुद्धि के अनुमोदन के लिये जो अप्सरा उतरी थीं और देव ऋषि आये थे वह सब रामचन्द्र जी के कहने से मिलकर बिभीषण को राजतिलक करने गये थे अब लौटे जा रहे हैं अब बिभीषण पुष्पक को आगे किये हुये आ रहा है। तो अब चलो ऐसे सहज महिमावाले और उदारचरित रामचन्द्र जी के दर्शन से अपने लोचन सुफल करें।

(दोनों बाहर जाते हैं)

सातवाँ अङ्क

[स्थान—लङ्का, सुवेल पर्वत]

(श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण सीता सुग्रीव आदि खड़े हैं ;
पुष्पक को आगे किये विभीषण आता है)

विभीषण—मैंने श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा पूरी की। नगर का सत्कार किया अब लौं.

मुख गिरत दृगजलधार बारहिं बार परी तुषार है ;
नहिं रुकत कंकन हाथ में यहि भाँति कृशितशरीर है ॥
सुरनारि छूटीं बन्दि सन मुसुकानि नभ छिति छात है ;
एक बेनि बाँधे केस, बिचरत मही, मलिन सब गात है ॥

(आगे बढ़कर) महाराज रामचन्द्रजी की जय हो, प्रभु आपने जो आज्ञा दी थी उनमें से इतनी पूरी की गईं।

छोड़े बन्दीलोग सब, दीन्हो ध्वजा सजाय ।
सोने की जंजीर घर बहुदिसि दईं लगाय ॥

यही पुष्पक नाम विमानराज है,

मन जानै, बस में रहै, रुकै न गति सब काल ;
रहै मनोरथ के सरिस यहि बिमान की चाल ॥

राम—वाह, लंकेश्वर वाह, बहुत अच्छा किया। (सुग्रीव) मित्र सुग्रीव अब क्या करना है।

सुग्रीव—फूला गर्व, गनत न काहु, बल धरे अपारा ;
काँटे सम जगहृदय गड़त, प्रभु, ताहि उखारा ॥
मिटो रानिअपमान, वचन आगे जो दीन्हा ।
देइ विभीषन राज ताहि पूरन प्रभु कीन्हा ॥

अब तो यही काम है कि हनुमानजी को भरतजी के पास भेजिये ; जब हनुमान जी द्रोणपर्वत लेने गये थे तभी उन्होंने हाल सुना होगा। सो वह बहुत घबड़ा रहे होंगे। और आय कर विमानराज की शोभा बढ़ाइये।

राम—बहुत अच्छा। (सब विमान पर बैठते हैं)

सीता—(अलग लक्ष्मण से) हम लोग अब कहां चलेंगे।

लक्ष्मण—भाभी, रघुकुल की राजधानी अयोध्या को।

सीता—तो क्या बनवास के दिन पूरे हो गये।

लक्ष्मण—आज ही एक दिन और है।

(विमान चलता है—सब बाहर जाते हैं)

[दूसरा स्थान—आकाश]

(विमान पर बैठे हुए राम सीता लक्ष्मण सुग्रीवादि आते हैं)

सीता—(अचरज से) आर्यपुत्र यह कौन सा देश दक्खिन की ओर बहुत दूर तक फैला हुआ है और नीला सा देख पड़ता है।

राम—रानी यह पृथ्वी का देश नहीं है परन्तु,

पहिलो ही वृषकेतु की मूरति परम लखात।
यह सागर, महिमा अगम जासु न जानी जात॥

सीता—वही जो हम बूढ़ियों से सुनते आये हैं कि हमारे ससुरों ने बनाया था। इसके बीच में यह क्या देख पड़ता है जो नई थाल पर उजली चादर सा बिछा हुआ है।

लक्ष्मण—भाभी,

अति चाव सन प्रभु बचन सुनि चहुँ ओर महि पर जायके।
यह रच्यो सेतु बिसाल बानरबीर पाथर लाय कै॥
यहि मानि हैं आदर सहित नित लोग सब संसार में।
जयखंभ सम प्रभुचरित कर लखि परत सिन्धु अपार में॥

राम—(उँगली से दिखा कर) भैया,

पहिचानौ यह भूमि कुञ्ज जहँ अमित निहारे।
बन तमाल की छाँह बीच सीतल अँधियारे॥
मलयाचल सन गिरत इहां झिरने बहुतेरे।
अरु तड़ागन माहिं नीर निर्मल तिन केरे॥

लक्ष्मण—जी हाँ वह खोहा यहाँ से दूर नहीं है।
[illegible] से जर्जर होत दिसा पुनि फोरत ग्यान अकास लौं जाई।
मेंह बयारि झकोरन सों घनघोर घटा घुमरी नभ छाई।
मूसरधार लगी बरसै जल कुञ्ज अंधेरे में राह न पाई।
पेड़न के रसगन्ध से वासित खोह में बैठि के रैन बिताई॥

सीता—(आपही आप) हाय मुझ अभागिनी के कारन इन इतना दुख सहना पड़ा है।

बिभी०—महाराज कावेरी के किनारे का देस देख पड़ता है।
अहिबेल के रस चुवत बिकसत पूगवन घन कुञ्ज में,
लखि परत गिरि नद बिबिध धाम पुरान रुखनपुञ्ज में॥
मुनि धरिके साथी, तहां बसि तत्वज्ञान बिचारहीं।
पढ़ि बेद बिधि अनुसार तप करि ब्रह्मजोति निहारहीं॥
ले थोड़ी दूर पर लोपामुद्रा समेत अगस्त्यजी बिराजते हैं।

राम—क्या हम लोग अगस्त्याश्रम के आगे निकल आये?
जिन सहजहि महँ सकल सिंधु कर नीर सुखावा।
हरि बिन्ध्याचलगर्व स्वर्ग लगि बढ़न छुड़ावा।
पचयो जो वातापि पेट के प्रबल कृसाना।
ऐसे मुनि के चरित करै जग कौन बखाना॥

[illegible] नमस्कार अवश्य करना चाहिये। ये ऐसे महात्मा हैं कि [illegible] का हाल जानते हैं और इनका प्रभाव अपार है।

(सब हाथ जोड़ते हैं)

(आकाश में) आन लङ्क पाबौ प्रजा जस नित रहै तुम्हार।
तरिहैं नामहुँ सुमिर तव जन भवसागरपार॥

राम—(सुन कर) क्या महामुनि को प्रणाम करने से आकाश [illegible] आशीर्वाद देती है। (सब सुनकर प्रसन्न होते हैं)।

बिभीषण—महाराज यह देखिये यह सब पम्पासर के पास

से देश है जहाँ हम लोग बहुत दिन तक रह चुके हैं ना भी इसे छोड़ने को जी नहीं चाहता।

ठेहँ दच्छहि बालि लाल दैखिद यह आवै।
यहाँ किष्किन्धा दालि इहाँ तब सात के लागे ॥
फेंके दुन्दुभि हाड़ इहाँ करि चरनप्रहारा।
इहाँ बालि को मोर हनूमतधाम निहारा ॥ १०

सीता—(आपही आप) क्या मेरा दुपट्टा हनुमान जी के हाथ में आर्यपुत्र ने यहीं देखा था।

राम—(सुध करके) रानी यहीं जब हम लोग तुम्हारे हरे जाने पर व्याकुल फिर रहे थे तो अनसूया का दिया दुपट्टा पहिला चिन्ह मिला था,

तन महँ मानहुँ कपूरपरागा।
मन महँ अमियवृष्टि सम लागा ॥
युगल हैन जनु सारद चन्दा।
तेहि देखत मैं लह्यौ अनन्दा ॥
(सीता लजाती है)

लछमन—जी. गृध्रराज पितु के बड़ मीता।
इहँ लरि भये पंख भुज रीता।
छाँड़ि वृद्धपन जर्जर गाता।
लह्यौ बिमल जस तनयवदाता ॥

सीता—(आपही आप) हाय मेरे कारन ऐसे ऐसे लोगों की ऐसी दशा हो गई।

सुग्रीव—महाराज हम लोग दंडक वन के आगे बढ़े आ रहे हैं। जहाँ,

आये ढूंढ़न काज नाक कान निज बहिन के।
जिनसे सहित समाज खरदूषन त्रिसिरा इहाँ ॥

सीता—(काँपती हुई) अरे फिर भी राक्षस सुन पड़ते हैं।
राम—रानी डरो मत अब उनका नाम ही रह गया है।

लछिमनधनुटंकार प्रलय सरिस निधिचरन कह ।
डुल्यो सघन यक बार सिंहचरन गजजूथ ज्यौं ।

(देख के) अरे विमानराज कैसे चल रहा है ।

विभीषण—महाराज सह्य नाम पहाड़ बहुत ऊँचा पास में आ गया है । इस के आगे आर्यावर्त्त है इस के पार चलने के लिये विमान भी मध्यम लोक से कुछ दूर जा रहा है ।

लक्ष्मण—यह जगह देखने की है जहां विष्णु के पैर पड़े थे ।

(विमान ऊपर जाता है)

[तीसरा स्थान—आकाश]

राम—(देख के) जिन के भानुवंश सन्ताना ।
प्रगट देख सो तेजनिधाना ॥
वेदतत्व सोइ मुरलिधारी ।
बहुत थान ले निकट हमारे ॥

(सब खिड़की से प्रणाम करते हैं)

सीता—(ऊपर देख के) अरे क्या दिन को भी तारे देख पड़ते हैं ।

राम—रानी तारे ही हैं । दिन को सूरज की चमक से नहीं देख सके इतने ऊँचे चढ़ि आने से अब वह बात नहीं रही ।

सीता—(कौतुक से) अरे आकास तो बाग सा जान पड़ता है इस में मानों फूल खिले हैं ।

राम—(चारों ओर देख के) जगत का तो कुछ आर पार समझ में नहीं आता ।

दूरी बस निकरे नहीं महि लगि तोहि पहार ।
देखि परत आकास को वस्तुन प्रगट अकार ॥

सुग्रीव—महाराज भाई के स्नेह से मैं निडर सा हो गया था तब इधर उधर भटकता यहां पहुँचा था ।

के देस हैं जहां हम लोग बहुत दिन तक रहे मुझे तो भी इसे छोड़ने को जी नहीं चाहता।

छेड़ो चकाहि वाज लाल दैखि रहु आगी।
बनो खिलौना छांडि इहां तब आर के लागे॥
फेंकि दुन्दुभि हाड़ इहां करि चरनप्रहारा।
इहाँ राखि कों भौर हनूमतपास निहारा॥

सीता—(आपही आप) क्या मेरा दुपट्टा हनुमान जी के हाथ में वायुपुत्र ने यहीं देखा था।

राम—(सुध करके) रानी यहीं जब हम लोग तुम्हारे हरे जाने पर व्याकुल फिर रहे थे तो अनसूया का दिया दुपट्टा पहिला चिन्ह मिला था.

तन महँ मानहुँ कपूरपरागा।
मन महँ अमियवृष्टि सम लागा॥
दृगन हेत जनु लावक चन्दा।
तेहि देखत मैं लह्यौ अनन्दा॥

(सीता लजाती है)

लक्ष्मण—जो गृध्रराज पितु के बड़ मीता।
इहँ लरि भये पंख भुज रीता।
छाँड़ि बुढ़पन जर्जर गाता।
लह्यौ विमल जस तनअवदाता॥

सीता—(आपही आप) हाय मेरे कारन ऐसे ऐसे लोगों की ऐसी दशा हो गई।

सुग्रीव—महाराज हम लोग दंडक वन के आगे बढ़े आ रहे हैं। जहां,

आये ढूंढ़न काज नाक कान निज बहिन के।
जिनसे सहित समाज खरदूषन त्रिसिरा इहां॥

सीता—(कांपती हुई) अरे फिर भी राक्षस सुन पड़ते हैं।

राम—रानी डरो मत अब उनका नाम ही रह गया है

लछिमनधनुटंकार प्रलय सरिस निशिचरन कर ।
हन्यो सबन एक बार सिंहगरज गजयूथ ज्यौं ॥

(देख के) अरे विमानराज कैसे चल रहा है।

बिभीषण—महाराज सह्य नाम पहाड़ बहुत ऊँचा बीच में आ गया है। इस के आगे आर्यावर्त्त है इस के पार चलने के लिये बिमान भी मध्यम लोक से कुछ दूर जा रहा है।

लक्ष्मण—यह जगह देखने की है जहां विष्णु के पैर पड़े थे।

(बिमान ऊपर जाता है)

[तीसरा स्थान—आकाश]

राम—(देख के) जिन के भानुवंश सन्ताना।
प्रगट देव सों तेजनिधाना ॥
वेदतत्व सोइ मूरतिधारे।
चढ़त यान से निकट हमारे ॥

(सब खिड़की से प्रणाम करते हैं)

सीता—(ऊपर देख के) अरे क्या दिन को भी तारे देख पड़ते हैं।

राम—रानी तारे ही हैं। दिन को सूरज की चमक से नहीं देख सकते इतने ऊँचे चढ़ि आने से अब वह बात नहीं रही।

सीता—(कौतुक से) अरे आकास तो बाग सा जान पड़ता है इस में मानों फूल खिले हैं।

राम—(चारों ओर देख के) जगत का तो कुछ वार पार समझ में नहीं पाता।

दूरी बस निगरे नहीं महि सरि खोहि पहार।
देखि परत आकास की बस्तुन प्रगट अकार ॥

सुग्रीव—महाराज भाई के स्नेह से मैं सिड़ी सा हो गया था तब इधर उधर भटकता यहां पहुँचा था।

अस्ताचल अरु उदयगिरि यह दोउ लाहु लखायँ ।
रवि ससि जाकी गोद में निसि दिन खेलन जायँ ॥

महाराज इधर भी देखिये,

अंजन और कैलास गिरि सरिस तुहुन परिमान ।
कज्जल मृगमद लै लसै धरती उरजा समान ॥

इधर सुमेरु पर्वत है जो सोने का है । दूसरी ओर गन्धमादन है जो आकाश से बातें कर रहा है । इस के उस पार हम लोगों की गति नहीं है ।

राम—(चारों ओर देखके अचरज से) यह क्यों सारी पृथ्वी अकस्मात् देख पड़ने लगी है । और संसार की सब वस्तु स्पष्ट दिखाई देती है ।

सीता—अरे यह क्या है । इसे तो मैं ने कभी देखा ही नहीं यह तो न मनुष्य है न पशु ।

राम—रानी यह घोड़मुहें किन्नरों का जोड़ा है इस देस में ऐसे ही जीव बसते हैं ।

विभीषण—यह तो सामने ही आ रहे हैं हो न हो कुबेर ने भेजा है ।

(किन्नरों का एक जोड़ा आता है)

किन्नर—महाराज दिनकरकुलचन्द्र रामचन्द्र, हम लोग धनेश जी की आज्ञा से आप की स्तुति करने अयोध्या को जा रहे हैं सो हमारे भाग्यों से आप का दर्शन बीच ही में हो गया । हम लोगों की पराधीनता भी धन्य है ।

(दोनों प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं)

किन्नर—ज्ञानिहंस के हित कमलाकर ।
दीनबन्धु कुलकुमुदसुधाकर ।
जन्म मरन सन जो घबराने ।
सुनें सो सुजस तुम्हार सयाने ॥

किन्नरी—जब लगि रहैं हिमगिरि धरनी।
बहैं अकास बीच लगि तरनी॥
पुण्य चरित तब जनककुमारी।
गावैं मनुजसृष्टि नित सारी॥

(दोनों आँखें थोड़ी देर बन्द कर खड़े रहते हैं फिर बाहर जाते हैं)

सब—बड़े आनन्द की बात है।

राम—विभीषण इस राह पर चलना अच्छा नहीं है तो अब चलो पृथ्वी के पास हो कर चलें।

विभीषण—महाराज देखिये,

मंदाकिनीजल सैल धोवत भये बिमल कपूरसे।
तन ओज की छवि काल हिमगिरिशिखर शोभित दूरसे॥
तम छदन मन कर ज्ञान लहि भवसिंधु मैं नहिं परत हैं।
ते महातेजनिधान मुनि के वृन्द इहँ तप करत हैं॥

लछमण—दादा यह कैसा देस है जिसे देखते टकटकी बंध जाती है आँखें फेर लेने को जी नहीं चाहता।

राम—(देख के घबड़ाहट से) भैया यह वह तपोभूमि है जहां गुरु कौशिकजी रहते हैं यहीं यज्ञावल्क्य के शिष्य होते विदेहराज के साथ गुरु जी ने बैठ कर बातचीत की थी।

सीता—(आप ही आप) क्या छोटे बाबाजी की बातें कर रहे हैं।

(चारों ओर देखती है)

राम—(लंकेश्वर, यह उचित नहीं है कि जिस भूमि पर गुरु जी के चरण पड़े हैं वहां हम लोग बिमान पर चढ़ कर चलें।

(परदे के पीछे) सुनो सुनो राम लछमण, कृशाश्व के शिष्य तुम को आज्ञा देते हैं।

राम और लछमण—(बिमान को उंगली से ठहरने को कह कर) हम लोग सावधान हैं।

(फिर परदे के पीछे)

चलै जाओ निज नगर दिसि रुकौ न इगर मंझारि।
अरुन्धतीपति ज्योति ऋषि देखत राह तुम्हारि॥

हम भी नित्यक्रिया करके दो घंटे में आते हैं।

दोनों—जो गुरु जी की आज्ञा (विमान फिर चलता है)

राम—आह महात्मा भी स्नेहवस होते हैं जिसकी महिमा से तपस्या और वेद पाठ से जो थोड़ा भी अवकाश मिला तो अयोध्या आवेंगे। और ठीक भी है ऐसे लोग तो तपोवन के हरिन और पेड़ों पर करुणा करते हैं मनुष्यों की कौन बात है, विशेष करके

भयो भानुकुलभूपवर केवल जन्म हमार।
अस्त्र शस्त्र सब को लहो इन सन ज्ञान अपार॥

विभीषण—(देख के) यह क्या है जो धूर से दिसा ऐसी छा रही है जैसे पानी सा बरस रहा है।

(सब अचरज से देखते हैं)

राम—(सोच के) हम समझते हैं कि हनुमान जी से हम लोगों के आने का हाल सुन कर सेना समेत भरत आ रहे हैं।

(हनुमान जी आते हैं)

हनुमान—(पांव पड़ के) महाराज,

करत रहे बैठे भरत प्रभुचरितन को ध्यान।
सुनि मो सन तव आगमन तुरतहिं कीन्ह पयान॥
रहत राम बांधे जटा चीर धरे निज अङ्ग।
हर्ष सहित आवत इतै प्रभु मंत्रिन के सङ्ग॥

राम—(प्रसन्न हो कर) बड़े आनन्द की बात है कि बहुत दिन पर आज भाई का हाल मिला।

लक्ष्मण—(बड़े चाव से) हनुमान जी, भाई कहां हैं।

हनुमान—सेना के आगे जो पांच छः जने हैं उन्हीं में भरत जी हैं।

सीता—(देखकर) अरे इनका रूप कैसा हो रहा है

विभीषण—अजी विमानराज महाराज भाइयों से मिलना चाहते हैं इधर जाओ।

(विमान उतरता है)

[चौथा स्थान—अयोध्या के बाहर सड़क]

(एक ओर से राम लक्ष्मण सीता सुग्रीव आदि और दूसरी ओर से भरत शत्रुघ्न आदि आते हैं)

राम—(जल्दी से पांव पड़ते हुए भरत को उठा कर) आओ भैया,

आगत ब्रह्मानन्द सम प्रगट रूप यहिकाल।
तेरे तन को परस यह सीतल मनहुँ मृनाल॥

(गले लगाते हैं)

(लक्ष्मण पैरों पड़कर भरत से मिलते हैं)

(शत्रुघ्न राम लक्ष्मण को प्रणाम करते हैं)

राम, लक्ष्मण—(भरत और शत्रुघ्न से) अपने कुल में जैसे लोग हो गये हैं वैसेही तुम भी हो।

(भरत और शत्रुघ्न सीता को दंडवत करते हैं)

सीता—भैया जेठे भाई के प्यारे हो।

राम—भैया भरत शत्रुघ्न,

हमरे दुखके सिंधु में आये पोत समान।
यह कपीन्द्र लंकेन्द्र यह धार्मिक मित्र सुजान॥

(सुग्रीव और विभीषण को दिखाते हैं)

(भरत और शत्रुघ्न दोनों से मिलते हैं)

भरत—भाई हम लोगों के कुल गुरु महात्मा वसिष्ठजी अभिषेक का प्रबंध करके आपकी राह देख रहे हैं आपकी क्या आज्ञा है

राम—(आपही आप) महात्मा कौशिक का भी आदर रखना चाहिये और वसिष्ठ जी यह कहते हैं। अच्छा समय पर ध्यान देना होगा। (प्रकाश) जो कुलगुरु की आज्ञा।

सब बाहर जाते हैं

[स्थान—अयोध्या राजमन्दिर]

(वशिष्ठ अरुन्धती कौशल्या सुमित्रा कैकयी बैठी हैं)

वशिष्ठ—(आपही आप)

कृपासिन्धु गुनसदन के मानहु परम निधान ।
आगमजल के बुन्द कर बहुत सो सुरविमान ॥
इन अखिल सोई देखित कृपाधाम श्रीराम ।
भये सो परम आनन्द तन हम सब पूरनकाम ॥

तौ भी लोकरीति करनी ही चाहिए । (प्रकाश) बहू कौशल्या सुमित्रा !

कौशल्या और सुमित्रा—कहिये गुरुजी ।

वशिष्ठ—हम लोगों की भाग से लड़के लौट आये ।

कौशल्या और सुमित्रा—आप की आशीषों से ।

अरुन्धती—(कैकयी को देखकर) बहू तुम क्यों उदास बैठी हो ।

कैकयी—माता मेरे अभाग से सब लोग यह कह रहे हैं कि मंझली मा ने मन्थरा से सन्देसा कहला कर लड़कों को बनवास दिया तो अब मैं बच्चों को क्या मुँह दिखाऊँ ।

अरुन्धती—बहू तुम सोच न करो । इसका भेद तुम्हारे गुरु जी ने समाधि से जान लिया है ।

सब—क्या ? क्या ?

अरुन्धती—माल्यवान के कहने से शूर्पणखा ने मन्थरा का रूप धर के यह सब किया ।

सब स्त्रियाँ—राक्षस भी बड़े ही पापी होते हैं देखो यहां तक की स्त्रियों को भी दुख देते हैं ।

वशिष्ठ—अभी मंगल के समय अब क्या दुख की बात करती हो । राक्षसों की बड़ाई की बात का यह कौन अवसर है ।

(राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न सीता विभीषण आदि आते हैं)

राम—(वसिष्ठ को देखकर हर्ष से) यहाँ महात्मा वसिष्ठ जी,

जाके पावन दरसनैं मो मन द्रवत विसेषि।
चंद्रकान्तमनि के सरिस राकासिहि कहँ देखि॥

(लक्ष्मण से) भैया इहाँ आओ।

राम और लक्ष्मण—गुरुजी राम लक्ष्मण तुम को प्रणाम करते हैं।

वसिष्ठ—तुम्हें ज्ञान के सधन तव निज निज अवसर पाय।
राजनीति औ धर्मरत रहौ दुनहु भाय॥

(राम और लक्ष्मण अरुन्धती को प्रणाम करते हैं)

अरुन्धती—तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।

(राम और लक्ष्मण क्रम से सब माताओं को प्रणाम करते हैं)

सब माता—(लड़कों को गले लगाके) जियो बेटा।

(सीता आगे बढ़कर वसिष्ठ को प्रणाम करती है)

वसिष्ठ—बेटी तुम वीरों की माता हो।

(सीता अरुन्धती को प्रणाम करती है)

अरुन्धती—(सीता को गले लगाकर) बेटी अब तक लोपामुद्रा अनसूया और हम यह तीन ही पतिव्रता संसार में कही जाती थीं तुम्हारे होने से चार हो गईं।

(सीता सासों के पैर छूती है)

सब—बहू तुम्हारे सपूत लड़का हो

(परदे के पीछे)

उत्सव घर घर आज करैं सब प्रजासमाजा।
सावधान अधिकारि करैं सब निज निज काजा॥
द्विज अभिषेक निमित्त विधान सकल करि राखैं।
मुनि कुशाश्व के शिष्य कुशिकनन्दन यह भाखैं॥

वसिष्ठ—(सुनकर) भैया भी कैसा भाग्यमान है जिस को सिंहासन पर बैठाने को विश्वामित्र जी आप आ रहे हैं

[स्थान—अयोध्या राजमन्दिर]

(वसिष्ठ अरुन्धती कौशल्या सुमित्रा कैकयी बैठी हैं)

वसिष्ठ—(आपही आप)

कृपासिन्धु गुनगनन के जानहु जगत निधान।
भारतजन के पुण्य कर उदय भो मूरतिमान॥
इन आँखिन सोई देखिअत कृपाधाम श्रीराम।
भये सो परम आनन्द मन हुए सब पूरनकाम॥

तौ भी लोकरीति करनी ही चाहिए। (प्रकाश) बहू कौशल्या सुमित्रा।

कौशल्या और सुमित्रा—कहिये गुरुजी।

वसिष्ठ—तुम लोगों की भाग से लड़के लौट आये।

कौशल्या और सुमित्रा—आप की आशीषों से।

अरुन्धती—(कैकयी को देखकर) बहू तुम क्यों उदास बैठी हो।

कैकयी—माता मेरे अभाग से सब लोग यह कह रहे हैं कि मंझली मा ने मन्थरा से सलैसा कहला कर लड़कों को बनवास दिया तो अब मैं बच्चों को क्या मुँह दिखाऊँ।

अरुन्धती—बहू तुम सोच न करो। इसका भेद तुम्हारे गुरु जी ने समाधि से जान लिया है।

सब—क्या? क्या?

अरुन्धती—माल्यवान के कहने से शूर्पणखा ने मन्थरा का रूप धर के यह सब किया।

सब स्त्रियाँ—राक्षस भी बड़े ही पापी होते हैं देखो यहां तक की स्त्रियों को भी दुख देते हैं।

वसिष्ठ—अजी मंगल के समय अब क्या दुख की बात करती हो। राक्षसों की बढ़ाई की बात का यह कौन अवसर है।

(राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न सीता बिभीषण आदि आते हैं)

राम—(वसिष्ठ को देखकर हर्ष से) यही महात्मा वसिष्ठजी हैं,

जाके पावन दरसनैं सों मन हुलसत निशोकि।
चंद्रकान्तमनि के सरिस राकाससि कहँ पेखि॥

(लक्ष्मण से) भैया इहाँ आओ।

राम और लक्ष्मण—गुरुजी राम लक्ष्मण तुम को दंडवत करते हैं।

वसिष्ठ—खुलैं ज्ञान के नयन नव निज निज अवसर पाय,
राजनीति औ धर्मरत रहौ सुनहु भाय॥

(राम और लक्ष्मण अरुन्धती को प्रणाम करते हैं)

अरुन्धती—तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।

(राम और लक्ष्मण क्रम से सब माताओं को प्रणाम करते हैं)

सब माता—(लड़कों को गले लगाके) जियो बेटा।

(सीता आगे बढ़कर वसिष्ठ को प्रणाम करती है)

वसिष्ठ—बेटी तुम वीरों की माता हो।

(सीता अरुन्धती को प्रणाम करती है)

अरुन्धती—(सीता को गले लगाकर) बेटी अब तक लोपामुद्रा अनसूया और हम यह तीन ही पतिव्रता संसार में कही जाती थीं तुम्हारे होने से चार हो गईं।

(सीता सासों के पैर छूती है)

सब—बहू तुम्हारे सपूत लड़का हो

(परदे के पीछे)

उत्सव घर घर आज करैं सब प्रजासमाजा।
सावधान अधिकारि करैं सब निज निज काजा॥
द्विज अभिषेक निमित्त विधान सकल करि राखैं।
मुनि कृशाश्व के शिष्य कुशिकनन्दन यह भाखैं॥

वसिष्ठ—(सुनकर) भैया यो कैसा भाग्यमान है जिस को सिंहासन पर बैठाने को विश्वामित्रजी आप आ रहे हैं।

और सब—बहुत अच्छी बात हुई।

(विश्वामित्र शिष्यों के साथ आते हैं)

विश्वा०—मङ्गलमिलन सकल काज नृप सन माँगि जो कछु मन चाह्यो।
मुनि सोइ निबाह उपाय सोचन व्यग्र चित इनसे रह्यो॥
मा लिहु विधि अनुकूल सब अभिषेक की आई घरी।
हिय होत परम अनन्द अब सब लोक की चिन्ता हरी॥

वसिष्ठ—यह कहाँ विश्वामित्रजी हैं।
लौकिकक्षत्रियतेज सों ब्रह्मतेज अधिकाय।
सो प्रभुता के धाम प्रभु लखै लखाय॥

(वसिष्ठ और विश्वामित्र एक दूसरे से मिलते हैं)

विश्वामित्र—महात्मा मैत्रावरुणि अब किस का आसरा देख रहे हो।

वसिष्ठ—कुछ नहीं, लोकरीति कीजिये।

विश्वामित्र—(ऋषियों से) चलो रामचन्द्र का अभिषेक करो।
(सब बाहर जाते हैं)

[स्थान—अयोध्या राजमन्दिर]

(रत्नसिंहासन रक्खा है महाराज रामचन्द्र लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न वसिष्ठ विश्वामित्र आदि आते हैं)

(सब लोग राज्याभिषेक की रीति भाँति करते हैं)

(नेपथ्य में दुन्दुभी बजती है और रंगभूमि से फूल बरसते हैं)

वसिष्ठ—क्या लोकपालों के साथ इन्द्र भी भैया रामचन्द्र के अभिषेक से प्रसन्न हैं।

राम—(अभिषेक पाके वसिष्ठ और विश्वामित्र से) प्रणाम करते हैं।

वसिष्ठ और विश्वा०—

निज भाइन के साथ, रामचन्द्र गुनधाम तुम।
रहौ धरनि के नाथ, जो पावो ॥

और सब—एवमस्तु ।
विश्वा०—ऐसा ही [illegible] ।
राम—गुरुओं क्या करना है ।

विश्वा०—रामचन्द्र देखो कि ये हैं सुग्रीव और विभीषण को विदा कर दो पुष्पक विमान भी कुबेर के पास जाय यह चाहता ऐसा होना ।

राम—बहुत अच्छा, गुरुजी ।

विश्वा०—ऐसा [illegible],

निज धर्म राख्यो अकल मान मिटाइ निज कुल शोक को ;
कीन्हों कृतारथ मारि रावन जगतहित के हेत को ।
कृतकृत्य भे हुए, राज पावन सहित सुख अवरो लह्यो ।
जो होय यदि अब अधिक तौ कहवावे तुम इच्छ सब कह्यो ।

राम—इस से अधिक और क्या हो सकता है । तो भी आप के प्रसाद से यह हो कि,

आलस छोड़ि महीप सबै यहि देश को नित्य करैं रखवारो ।
औसर पै बरसै जल ईति सों लोक सबै सब होय सुखारो ।
राम प्रसाद करैं रचना कविलोग प्रमोद के हेत विचारो ;
पंडित हू सुख पावैं सदा पढ़के नित अर्थ प्रबंध निहारो ॥

विश्वा०—एवमस्तु ।

(सब बाहर जाते हैं)

इति श्रीअवधवासी भूपउपनाम सीताराम रचित ।
महावीरचरितभाषा नाटक समाप्त हुआ ॥

Printed by RAMZA[illegible] SHA[illegible] at the [illegible] Press Allahabad

गोस्वामी श्री तुलसीदासजी के हाथ का लिखा हुआ

रामचरितमानस अयोध्या काण्ड

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥

[illegible] कुछ लोगों का मत है इस कारण [illegible] जो कुछ उन्होंने लिखा है [illegible] उनकी प्रसिद्ध जन्मभूमि राजापुर [illegible] लिखी अयोध्याकाण्ड की पोथी रक्खी है। [illegible] हुआ है। इस में और साधारण रामायणों में बड़ा [illegible] है और [illegible] इस अन्तर के कारण अर्थ नष्ट हो गया [illegible] के सुप्रसिद्ध लेखक लाला सीताराम बी. ए. ने उसको ज्यों की त्यों [illegible] से छपवाई और रामायण के प्रेमियों के [illegible] दिया है। उसके साथ गोस्वामी जी का जीवन-चरित्र, [illegible] चित्र, उनके राजापुर और काशी में निवास स्थानों [illegible] चित्र, राजापुर की पोथी के कुछ पृष्ठों का फोटोग्राफ [illegible] का नकशा; अयोध्या और चित्रकूट के प्रसिद्ध स्थानों के चित्र [illegible] विलायत से छपकर आये हैं, लगे हैं सुन्दर कपड़े की जिल्द सुनहरे अक्षरों के साथ है। इसमें दो हजार से ऊपर खर्च हुआ है। और थोड़ी ही सी प्रतियाँ छापी गई हैं।

[illegible] मूल्य [illegible]

मिलने का पता—

रामनारायन लाल बुकसेलर

कटरा—इलाहाबाद।